इकाई 5
प्रथम विश्व युद्ध

प्रथम विश्व युद्ध मानव इतिहास का अब तक लड़ा गया सबसे विनाशकारी युद्ध था। यह युद्ध 1914 ई. से प्रारम्भ होकर, चार वर्ष तीन माह और 11 दिन तक चला। प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व सम्पूर्ण विश्व में यूरोप के राज्यों का वर्चस्व था। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा एशिया में जापान का इस समय तक महाशक्ति के रूप में उदय हो चुका था।

पृष्ठभूमि

यूरोप में इस समय इंग्लैण्ड सर्वाधिक समृद्ध तथा शक्तिशाली राष्ट्र था। विश्व की सर्वश्रेष्ठ नौसेना उसके पास थी। इंग्लैण्ड का औपनिवेशिक साम्राज्य विशाल तथा विश्व के प्रत्येक भाग में स्थित था। उसकी रुचि यूरोप की आंतरिक राजनीति में न होकर अपने आर्थिक तथा साम्राज्यवादी हितों की वृद्धि एवं रक्षा में थी। जर्मनी, इंग्लैण्ड का प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी था। उसकी थल सेना विश्व में सर्वश्रेष्ठ थी। जर्मनी औद्योगिक एवं आर्थिक दृष्टि से शक्तिशाली राष्ट्र बन चुका था, किन्तु उपनिवेशों की संख्या उसके पास कम थी। जर्मनी यूरोप के मध्य में स्थित था, विलियम द्वितीय के नेतृत्व में वह यूरोप का अधिनायक बनना चाहता था। उसने 'श्लेफिन योजना' बनाई थी जिसके अन्तर्गत फ्रांस और रूस पर निर्णायक और तीव्र गति से आक्रमण करना निहित था।

रूस क्षेत्रफल की दृष्टि से यूरोप का सबसे बड़ा राज्य था। यहां निरंकुश राजतंत्र था। रूसी राज्य में गैर रूसी जातियां बड़ी संख्या में थी। रूस की रूचि बाल्कन प्रदेश में थी, जहां बड़ी संख्या में उसके स्वजातीय स्लाव थे। रूस आटोमन साम्राज्य को विभाजित कर वृहद स्लाव राज्य की स्थापना करना चाहता था। आस्ट्रिया बाल्कन में रूस का सबसे बड़ा विरोधी था। फ्रांस 1870 में जर्मनी से हुई पराजय का बदला लेना चाहता था। फ्रांस इस युद्ध में जर्मनी द्वारा छीने गये आल्सेस तथा लारेन के प्रदेश वापस लेकर अपने अतीत के गौरव को प्राप्त करने की इच्छा रखता था। इस समय तक एशिया, अफ्रीका में यूरोप के विभिन्न देशों के उपनिवेश स्थापित हो चुके थे। एशिया में भारत, लंका, वर्मा, मलाया पर इंग्लैण्ड का नियन्त्रण था। फारस अफगानिस्तान, तिब्बत, नेपाल तथा मध्य पूर्व इंग्लैण्ड के प्रभाव क्षेत्र में थे। हिन्द चीन तथा इण्डोनेशिया, फ्रांस के अधीन थे। चीन को विभिन्न यूरोपीय शक्तियों तथा जापान ने आपस में बांट रखा था। अफ्रीका में इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, पुर्तगाल, स्पेन आदि देशों के उपनिवेश स्थापित हो चुके थे।

एशिया और अफ्रीका के उपनिवेशों के नियंत्रण के प्रश्न पर इनमें अत्यधिक प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गई। अंत में जब एशिया में और उपनिवेश उपलब्ध नहीं थे और आपसी अविश्वास व शत्रुता के कारण इनमें समझौता संभव नहीं था। उन्होंने पूरे विश्व को युद्ध में झोंक दिया। प्रथम विश्व युद्ध एकदम से शुरू नहीं हो गया बल्कि कई कारणों और घटनाओं के एक सिलसिले का परिणाम था जो 1914 के काफी पहले से चल रहा था। इस युद्ध में लगभग विश्व के सभी राष्ट्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित हो गये थे।

प्रथम विश्व युद्ध के कारण

प्रथम विश्व युद्ध का आरंभ 1914 ई. में आस्ट्रिया के युवराज फर्डीनेण्ड की हत्या के कारण हुआ था। किन्तु यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। इसकी पृष्ठभूमि 1870 से 1914 ई. तक साम्राज्यवादी राष्ट्रों के स्वार्थों, नीतियों तथा घटनाओं द्वारा तैयार हो चुकी थी। पिछले कई वर्षों से ऐसे अनेक कारण यूरोप में एकत्रित होते जा रहे थे जिनकी वजह से किसी भी एक देश या वर्ग को उत्तरदायी नहीं कहा जा सकता था। विभिन्न विरोधी परिस्थितियों के मिलने से कोई भी चिनगारी प्रचण्ड अग्नि का रूप धारण करने की क्षमता रखती थी, और प्रथम विश्व युद्ध के समय ऐसा ही हुआ। 1891 ई. में बिस्मार्क ने कहा था ''मैं विश्व युद्ध को नहीं देखूंगा, परन्तु तुम देखोगे और उसका प्रारंभ पूर्व से होगा''।

1. उग्र राष्ट्रीयता :– राष्ट्रीयता की भावना फ्रांसीसी क्रांति की देन थी। जर्मनी और इटली का एकीकरण राष्ट्रवाद की भावना का प्रतिफल था। लेकिन 19वीं शताब्दी के अंत में राष्ट्रीयता की इस भावना ने उग्र रूप धारण कर लिया। प्रत्येक राष्ट्र अपने विस्तार, सम्मान तथा गौरव की वृद्धि तथा अन्य देशों को नष्ट करने को उद्यत हो उठे। फ्रांस आल्सेस तथा लारेन पाना चाहता था तो राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित पोल, चेक, सर्ब, बल्गार आदि जातियां आस्ट्रिया से स्वतंत्र होना चाहती थी। जर्मन सम्राट कैसर विलियम को विश्व राजनीति तथा विश्व साम्राज्य का स्वप्न दिखाई दे रहा था। उसे विश्वास था कि जर्मनी का वैभव तो दूसरे देशों तक विस्तार में निहित है। जब कि फ्रांस, जर्मनी से प्रतिशोध लेने के लिये अवसर की तलाश में था। कभी भी प्रतिशोधात्मक युद्ध भड़कने का भय था। देशभक्ति की उग्रभावना शांति विरोधी थी। वे यह मानते थे कि समस्या का हल केवल युद्ध से ही निकल सकता है।

2. इंग्लैण्ड व जर्मनी के बीच साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा :– उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में जर्मनी ने तीव्र आर्थिक व औद्योगिक प्रगति की ओर इंग्लैण्ड व फ्रांस को औद्योगिक उत्पादन में पीछे छोड़ दिया। साम्राज्यवाद की दौड़ में अपने मुख्य प्रतिद्वन्द्वी इंग्लैण्ड़ के मुकाबले में जर्मनी उतने ही उपनिवेश प्राप्त करना चाहता था जितने इंग्लैण्ड के पास थे ताकि वह अपनी आर्थिक आवश्यकतायें पूरी कर सके। ब्रिटिश नौसेनिक शक्ति को भी तब झटका लगा जब जर्मनी ने एक बड़ा युद्धपोत इम्परेटर बना लिया। जर्मनी ने कील नहर का निर्माण कर इंग्लैण्ड की तटरेखा के लिये खतरा पैदा कर दिया। बर्लिन को बगदाद से जोड़ने वाली रेल्वे लाइन का निर्माण भी जर्मनी ने कर लिया। इस तरह पूर्व में जर्मनी को सेना या सामान भेजना आसान हो गया। जिससे ब्रिटेन के पूर्व में उपनिवेशों पर खतरा बढ़ गया।

3. जर्मनी व फ्रांस के बीच प्रतिस्पर्धा :– 1871 के युद्ध में जर्मनी ने फ्रांस को हरा दिया। अपने दो उपजाऊ और औद्योगिक क्षेत्र आल्सेस व लारेन जर्मनी को देने पड़े। फ्रांस इस अपमान को भूल न सका व इसका बदला लेने के लिये अवसर की तलाश में रहा। फ्रांस व जर्मनी के हित भी उत्तरी अफ्रीका में मोरक्को को लेकर भी टकराते थे। वर्ष 1904 में फ्रांस और ब्रिटेन ने एक गुप्त संधि कर ली जिसके अनुसार फ्रांस को मोरक्को में तथा ब्रिटेन को मिश्र में मनमानी करने की छूट मिल गई। जर्मनी को इस समझौते से अलग रखने के कारण जर्मनी ने मोरक्को को फ्रांस के विरूद्ध भड़काया। युद्ध के बादल तभी छंटे जब फ्रांस ने मध्य अफ्रीका स्थित फ्रांसीसी उपनिवेश कांगो को जर्मनी को देना स्वीकार कर लिया।

4. गुटों का निर्माण :– संघर्ष व टकराव ने साम्राज्यवादी शक्तियों को मित्र बनाने हेतु खोज में लगा दिया ताकि भविष्य में युद्ध में उनकी सहायता ले सकें। 1882 में जर्मनी, आस्ट्रिया व इटली ने त्रिगुट की स्थापना की कि यदि प्रतिद्वंद्वी शक्ति के साथ युद्ध हुआ तो वह आपस में सैनिक सहायता करेंगे। इंग्लैण्ड, रूस व फ्रांस ने त्रिदेशीय संधि 1907 में की। परस्पर विरोधी गुटों के निर्माण से यूरोप दो खेमों में बंट गया। जिससे यूरोपीय राष्ट्रों में तनाव व प्रतिद्वंद्विता बढ़ गई। इन देशों में हथियारों व अस्त्र–शस्त्रों की होड़ लग गई। आपसी घृणा व शक ने शांति के वातावरण को भंग कर दिया। प्रत्येक गुट ने युद्ध का प्रचार किया। अब यह स्पष्ट था कि यदि युद्ध प्रारम्भ हुआ तो पूरा यूरोप ही इस युद्ध में धकेला जायेगा।

5. सर्व–स्लाव आंदोलन तथा बाल्कन राजनीति :– यूरोप का पूर्वी क्षेत्र जिसे बाल्कन क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र में स्थित कई राज्य जैसे यूनान, रोमानिया, बुल्गारिया, सर्बिया, मोण्टेनेग्रो तथा अन्य कई छोटे राज्य जो कि आटोमन साम्राज्य (तुर्की) के शासक के अधीन थे। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में आटोमन शक्तिहीन होने लगा और आस्ट्रिया तथा रूस के कई राज्यों में स्लाव रहते थे जो मूल रूप से रूसी जाति के थे। उन्होंने रूस के समर्थन से एक राष्ट्रीय आंदोलन छेड़ दिया जिसे सर्वस्लाव आंदोलन कहते हैं। जिसका उद्देश्य स्लाव बहुल सर्बिया राज्य को स्वतंत्र कराना था। इस आंदोलन को जहां रूस समर्थन कर रहा था वहीं आस्ट्रिया विरोध कर रहा था। इस से रूस व आस्ट्रिया के बीच प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गयी। 1908 में आस्ट्रिया ने स्लाव राज्यों बोस्निया तथा हर्जेगोविना को अपने अधिकार क्षेत्र में कर लिया। जिससे आस्ट्रिया तथा सर्बिया एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी बन गये।

6. कूटनीतिक संधियाः– यूरोप में इटली के एकीकरण और जर्मनी के एकीकरण ने ऐसे युग का सूत्रपात किया जो गुप्त

संधियों का युग था। बिस्मार्क को इन गुप्त संधियों का जन्मदाता कहा जाये तो अति योक्ति नहीं होगी। बिस्मार्क ने विभिन्न राष्ट्रों को विभाजित और यूरोपीय राजनीति में गुप्त संधियों के माध्यम से अकेला रखा। बिस्मार्क ने फ्रांस को पराजित करने के बाद जर्मनी की सुरक्षा के लिये आस्ट्रिया तथा इटली से गुप्त संधियों के माध्यम से त्रिगुट का निर्माण किया। फ्रांस ने भी अपनी सुरक्षा की चिंता में रूस और इंग्लैण्ड से मैत्री कर ''ट्रिपल एंतात'' का गठन किया। इस ट्रिपल एंतात का 1914 तक लगातार नवीनीकरण होता रहा। परिणाम स्वरूप समस्त यूरोप में आपसी संदेह और मंत्रणाओं का दौर चलने लगा। निरंतर असुरक्षा और भय ने अफवाहों और युद्ध की सरगर्मियों को बढ़ावा दिया।

7. व्यापारिक तथा औपनिवेशिक प्रतिस्पर्धाः— उपनिवेश स्थापित करने तथा अपने राष्ट्रों की उत्पादित वस्तुओं की खपत के लिये उपनिवेशों में व्यापार के प्रसार हेतु यूरोपीय राष्ट्रों में आपसी होड़ इस युद्ध का प्रमुख कारण थी। 19वीं सदी के उत्तरार्ध तक इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान तथा अमेरिका का तेजी से औद्योगिक विकास आरंभ हुआ। इसके साथ ही कच्चे माल की आपूर्ति तथा उत्पादित माल के लिये नवीन बाजारों की आवश्यकता हुई। बढ़ती जनसंख्या तथा सैनिक आवश्यकताओं ने भी उपनिवेश स्थापना हेतु प्रेरित किया। इस प्रतिस्पर्धा में सबसे अधिक क्षेत्र इंग्लैण्ड और फ्रांस को प्राप्त हुआ। जर्मनी इस में पीछे रह गया। 1890ई. के बाद उसने उपनिवेश प्राप्ति के प्रयास आरंभ किये। जिससे इंग्लैण्ड तथा फ्रांस उसके शत्रु हो गये। रूस तथा आस्ट्रिया ने बाल्कन प्रदेश में प्रभाव बढ़ाना आरंभ कर दिया। इटली भी उपनिवेशों के लिये लालायित था। उपनिवेश प्राप्ति की इस स्पर्धा ने परस्पर घृणा तथा अविश्वास को बढ़ाया।

8. समाचार पत्रों की भूमिकाः— समाचार पत्र अपने देश की विचारधारा का प्रतिनिधित्व अवश्य करते हैं और जनमत को प्रभावित करने में उनका बड़ा योगदान रहता है। इस समय में सभी देशों के समाचार पत्रों ने उग्र राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर बहुत सी घटनाओं को इस प्रकार से प्रस्तुत किया, जिससे कि जनता में उत्तेजना बढ़ी और शांतिपूर्ण ढ़ंग से समझौता करना कठिन हो गया। जब ब्रिटेन के समाचार—पत्रों में जर्मन सम्राट विलियम द्वितीय की नीतियों की आलोचना की गई, तो जर्मनी की जनता इंग्लैण्ड को अपना शत्रु समझने लगी। इसी प्रकार जर्मन समाचार पत्रों ने भी इंग्लैण्ड की जनता को उकसाया। फ्रांस और जर्मनी के सम्बन्ध भी समाचार पत्रों के कारण बिगड़े। फर्डीनेण्ड की हत्या के पश्चात् सर्बिया और आस्ट्रिया के समाचार पत्रों में एक दूसरे के विरूद्ध जो कटुतापूर्ण लेख लिखे गये, उससे दोनों देशों की जनता में रोष उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यूरोपीय देशों के समाचार पत्रों ने युद्ध को भड़काने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। युद्ध की परिस्थितियों को तभी संभाला जा सकता था, जब प्रेस की स्वतंत्रता पर कोई नियंत्रण होता। वस्तुतः अनियंत्रित प्रेस भी प्रथम विश्वयुद्ध का एक महत्वपूर्ण कारण था।

9. अन्तर्राष्ट्रीय अराजकताः— 20वीं सदी के प्रथम दशक मे ही यूरोप में अशांति एवं अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो चुकी थी। शक्तिशाली देश छोटे—छोटे राज्यों को बांटकर अपने स्वार्थो की पूर्ति करने में लगे थे। 1900 ई. के पश्चात् ऐसी घटनायें घटित हुई, जिनके कारण अन्तर्राष्ट्रीय तनाव बना रहा।

रूस—जापान युद्ध (1904—05) ने भी यूरोपीय राजनीति को प्रभावित किया। रूस की पराजय के कारण उसकी दुर्बलता से लाभ उठाने के लिये जर्मनी ने मोरक्को में फ्रांस को चुनौती दी और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में गंभीर स्थिति उत्पन्न कर दी। इसके अतिरिक्त जब रूस को सुदूर—पूर्व में साम्राज्य विस्तार का अवसर नहीं मिला, तो उसने बाल्कन—प्रदेशों में अनुचित हस्तक्षेप करना आरंभ कर दिया।

वर्ष 1911 में फेज के विद्रोह को दबाने के लिये तथा यूरोपियन लोगों के जनजीवन की रक्षा करने के लिये फ्रांस ने वहां अपनी सेना भेज दी, तो इस पर जर्मनी ने इसका विरोध किया और अपना 'पेंथर' नामक युद्ध पोत अगादियर के बंदरगाह पर भेज दिया। इससे अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध का खतरा बढ़ गया। इंग्लैण्ड की चेतावनी के कारण जर्मनी को झुकना पड़ा तथा फ्रांसीसी कॉगो का बहुत—सा भाग जर्मनी को देना पड़ा। इस घटना से इंग्लैण्ड और जर्मनी के सम्बन्धों में और अधिक कटुता उत्पन्न हुई। वर्ष 1908—09 ई. में आस्ट्रिया द्वारा

यूरोप–1914

बोस्निया–हर्जेगोविना को अपने साम्राज्य में मिलाने से एक गंभीर संकट उत्पन्न हो गया। रूस और आस्ट्रिया तथा इटली और आस्ट्रिया के आपसी सम्बन्ध इसी कारण बिगड़ गये।

वर्ष 1912–13 ई. के बाल्कन युद्धों ने भी अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को अत्यधिक तनावपूर्ण बना दिया इन युद्धों के कारण सैन्यवाद और शस्त्रीकरण की दौड़ और तेज हो गई। बल्गेरिया सबसे अधिक असंतुष्ट राज्य था क्योंकि सर्विया, यूनान आदि राज्यों ने उससे बहुत सा भू–भाग छीन लिया था। इन बाल्कन युद्धों के महत्व के कारण ही ग्राण्ट एवं टेम्परले ने लिखा है कि ''1914ई. के महायुद्ध के लिये कोई घटना इतनी उत्तरदायी नहीं, जितने कि बाल्कन युद्ध।''

युद्ध का तात्कालिक कारणः– आस्ट्रिया और सर्बिया के सम्बन्ध 1908 ई. से ही बिगड़े हुये थे जो 1914 ई. तक अपनी चरम सीमा पर पहुंच गये। सर्बिया के कुछ उग्रराष्ट्रवादियों ने सर्वस्लाव आन्दोलन के प्रभाव में आकर स्लावों की मुक्ति के लिये अनेक गुप्त संस्थायें बनाई थी। इनमें एक संस्था 'काला हाथ' भी थी। इस संस्था ने 'संगठन या मृत्यु' नामक दूसरी संस्था से मिलकर बोस्निया के गवर्नर पोटियोरके की हत्या की योजना बनाई। किन्तु इसी समय उन्हें यह पता चला कि आस्ट्रिया का युवराज फर्डिनेण्ड बोस्निया की सरकारी यात्रा पर आने वाला है, तो उन्होंने युवराज की हत्या का षड्यंत्र रचा। 28 जून 1914 ई. को बोस्निया के प्रमुख शहर सेराजिवो में युवराज फर्डीनेण्ड और उनकी पत्नी की षड्यंत्रकारियों ने गोली मारकर हत्या कर दी। इस घटना ने यूरोप को युद्ध की ज्वाला में झोंक दिया।

इस हत्याकाण्ड की आस्ट्रिया में कड़ी प्रतिक्रिया हुई।

हत्यारे सर्व होने के कारण आस्ट्रिया ने सर्बिया को कठोर दण्ड देने का निश्चय किया, किंतु जर्मनी के समर्थन के बिना सर्बिया से युद्ध करने का खतरा नहीं उठा सकता था। अतः आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसिस ने जर्मन सम्राट को पत्र लिखकर सहयोग का अनुरोध किया, जिसे जर्मनी ने स्वीकार करते हुये आस्ट्रिया को सूचित किया कि सर्बिया के सम्बन्ध में वह जो भी निर्णय करेगा, उसका जर्मनी पूर्ण समर्थन करेगा। जर्मनी का समर्थन पाकर आस्ट्रिया ने 23 जुलाई 1914 को सर्बिया को अल्टीमेटम दिया, जिसमें उसकी शर्तों को 48 घंटे की अवधि में मानने को कहा गया। आस्ट्रिया ने अपनी चेतावनी में सर्बिया पर 1909 ई. के समझौते का उल्लंघन करने तथा आस्ट्रिया विरोधी प्रचार को प्रोत्साहित करने तथा हत्या के बाद षडयंत्रकारियों को यथोचित दण्ड न देने का आरोप लगाया। इन आरोपों के संदर्भ में सर्बिया ने अधिकांश शर्तों को स्वीकार कर लिया परंतु दो शर्तें जिसमें आस्ट्रिया के अधिकारियों द्वारा सर्बिया में जांच–पड़ताल में भाग लेने की मांग भी सम्मिलित थी, मानने से उसकी प्रभुसत्ता और सम्मान को ठेस पहुंचती थी। इन शर्तों के सम्बन्ध में सर्बिया ने हेग के अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा जो भी निर्णय हो, उसे स्वीकार करने की बात कही। यूरोप के सभी देशों ने सर्बिया के उत्तर को संतोषजनक माना। किन्तु आस्ट्रिया इस समय तक युद्ध करने का निश्चय कर चुका था। अतः उसने सर्बिया के उत्तर को असंतोषजनक मानकर उसे अस्वीकार कर दिया और 28 जुलाई 1914 को सर्बिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

विश्व युद्ध का आरंभः–

28 जुलाई, 1914 ई. को आस्ट्रिया द्वारा सर्बिया पर आक्रमण किये जाने के साथ ही प्रथम विश्व युद्ध की शुरूआत हो गई अगले दिन जब रूस को सूचना मिली कि आस्ट्रिया ने बेलग्रेड पर बम वर्षा की है, तो रूस की सेना भी लामबंद हो गई। रूस की सेना की लामबंदी के कारण जर्मनी का युद्ध में प्रवेश करना अनिवार्य हो गया। 1 अगस्त, 1914 ई. को जर्मनी ने रूस के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और 3 अगस्त को फ्रांस के विरूद्ध भी युद्ध की घोषणा कर दी। परन्तु एक वर्ष तक इटली तटस्थ बना रहा। जर्मनी की सेनाओं को बेल्जियम द्वारा मार्ग न देने के प्रश्न को लेकर जब जर्मनी और बेल्जियम में तनातनी हुई तो इंग्लैण्ड ने 4 अगस्त 1914 को जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस के साथ ही यूरोप की सभी बड़ी शक्तियों के बीच युद्ध प्रारंभ हो गया। कुछ ही समय पश्चात् यूरोप और एशिया के कुछ अन्य राज्य भी इसमें सम्मिलित हो गये। परिणाम स्वरूप यह युद्ध विश्वव्यापी हो गया।

सम्पूर्ण विश्व, युद्ध के लिये दो प्रमुख गुटों में बट चुका थाः–

1. मित्र राष्ट्र :– मित्र तथा संयुक्त राष्ट्रों में इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस सर्बिया, जापान, पुर्तगाल, इटली, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूमानिया, यूनान, श्याम, साइबेरिया, क्यूबा, पनामा, ब्राजील, ग्वाटेमाल आदि थे।

2. धुरी राष्ट्र :– केन्द्रीय शक्तियों में जर्मनी, आस्ट्रिया–हंगरी, बुल्गेरिया और तुर्की मुख्य थे।

युद्ध का उत्तरदायित्वः–

विश्व युद्ध समाप्त हो जाने के पश्चात् शांति सम्मेलन के समय जीते हुये देशों ने 1919 ई. में युद्ध के उत्तरदायित्व का पता लगाने के लिये एक आयोग नियुक्त किया था। इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट में जर्मनी तथा उसके मित्र राष्ट्रों को मुख्य रूप से दोषी ठहराया था। किंतु युद्ध के लिए किसी एक देश या गुट को उत्तरदायी मानना उचित नहीं होगा। यदि हम उस समय की 'व्हाइट बुक', 'ओरेंज बुक', 'येलो बुक' आदि को देखें, जिन्हें क्रमशः जर्मनी, इंग्लैण्ड़ रूस और फ्रांस ने प्रकाशित करवाया था, तो भी यह ठीक–ठीक पता नहीं चलता कि वास्तविकता क्या थी क्यों कि प्रत्येक राष्ट्रने युद्ध का उत्तरदायित्व अपने ऊपर न लेकर उसे दूसरों पर थोपा था। परंतु जब हम युद्ध से सम्बन्ध रखने वाले अन्य व्यक्तियों के पत्र, डायरी और संस्मरणों की ओर दृष्टिपात करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध का दोष किसी एक राष्ट्र का न था, फिर भी दोष को क्रमबद्ध किया जा सकता है। प्रो. फे. ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि ''केवल जर्मनी और उसके मित्रों को युद्ध करने के लिये दोषी ठहराना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं है।'' उन्होंने सभी राज्यों को किसी न किसी रूप में दोषी ठहराया है।

सर्बिया की सरकार ने हत्या के षड्यंत्र की जानकारी होते हुये भी उसको रोकने की प्रभावी कोशिश नहीं की और आस्ट्रिया को भी इसकी जानकारी नहीं दी। बदले की भावना से प्रेरित आस्ट्रिया द्वारा सर्बिया को विश्व मानचित्र से मिटाने का प्रयास अनुचित ही माना जायेगा। लेकिन सबसे अधिक दायित्व जर्मनी का है जिसने आस्ट्रिया को पूर्ण समर्थन दिया। दूसरी

ओर रूस को सर्बिया के विनाश की संभावना ने उत्तेजित कर दिया। जर्मनी इस भुलावे में रहा कि यह युद्ध एक 'स्थानीय युद्ध' ही बना रहेगा। किंतु रूस की सैनिक कार्यवाही से जर्मनी भयभीत हुआ। फ्रांस ने रूस का अनुसरण किया। जिससे युद्ध को अब रोका जाना कठिन हो गया। वास्तव में किसी एक राज्य या पक्ष को युद्ध के लिये दोषी ठहराना संभव नहीं है। इस समय विश्व की सभी शक्तियों ने संसार की शांति की अपेक्षा अपने स्वार्थों एवं महत्वाकांक्षाओं को अधिक महत्व दिया। बेल्जियम को छोड़कर कोई राज्य पूर्णतः निर्दोष नहीं था।

प्रथम विश्वयुद्ध का घटनाक्रमः—

यह युद्ध विश्व के इतिहास में एक अभूतपूर्व युद्ध था, जो चार वर्ष तीन माह ग्यारह दिन तक चला। इसमें 30 राज्यों के लगभग 6 करोड़ 50 लाख सैनिकों ने भाग लिया। इससे पूर्व विश्व के किसी भी युद्ध में इतनी संख्या में सैनिकों ने भाग नहीं लिया था। इस युद्ध में विजेता और पराजित दोनों पक्षों को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी। युद्ध क्षेत्र में मारे जाने वाले सैनिकों की संख्या लगभग 80 लाख थी और लगभग 2 करोड़ व्यक्ति घायल हुये।

युद्ध के प्रारंभिक 3½ वर्षों तक

धुरी राष्ट्रों का पलड़ा भारी रहा। इसी बीच रूस में बोल्शेविकों ने जार के निरंकुश राजतंत्र को उखाड़ कर साम्यवादी सरकार स्थापित कर ली। इस नयी सरकार ने जर्मनी से 1917 ई. में संधि कर ली। इससे जर्मनी की स्थिति अधिक मजबूत हो गई। मित्र राष्ट्रों की पराजय निकट दिखाई देने लगी। अब जर्मनी ने मित्र राष्ट्रों के जहाज डुबोना शुरू कर दिया।

6 अप्रैल 1917 ई. को अमेरिकी जहाज डुबो देने के कारण अमरीका ने जर्मनी के विरूद्ध युद्ध घोषित कर दिया। अमरीका के युद्ध में प्रवेश करते ही धुरी राष्ट्रों की पराजय आरम्भ हो गई। 29 सितंबर 1918 ई. को जर्मन सम्राट विलियम द्वितीय ने सिहांसन छोड़ दिया तथा नीदरलैण्ड में शरण ले ली। जर्मनी में गणतंत्र स्थापित कर दिया गया। 11 नवम्बर 1918 को प्रातः 11 बजे युद्ध समाप्त हो गया।

1919 का पेरिस शांति सम्मेलनः– प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर स्थायी शांति की स्थापना हेतु पेरिस में एक शांति सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में 32 देशों को आमंत्रित किया गया था। वार्ता को गुप्त रखने के लिये चार बड़े राष्ट्रों की परिषद का निर्माण किया गया। इसमें अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन, इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री लायड जार्ज, फ्रांस के प्रधानमंत्री क्लीमेन्शू तथा इटली के प्रधानमंत्री ओरलेण्डो प्रमुख थे। इस परिषद के सदस्यों में सभी अपनी–अपनी विचारधारा, आदर्शों तथ स्वार्थों की दृष्टि से अलग–अलग विचार तथा प्रभाव रखते थे। विल्सन एक आदर्शवादी था, जिसकी दृष्टि मुख्यतः पूर्ण न्याय, लोकतंत्र व राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के सिद्धान्तों तथा राष्ट्रसंघ की प्रतिबद्धता पर थी। जब कि क्लीमेन्शू आदर्शवाद से घृणा करता था। उसके मन में जर्मनी से बदला लेने की उत्कट अभिलाषा थी। वह जर्मनी को इतना कुचल देना चाहता था कि जर्मनी के लिये तीसरी बार फ्रांस पर आक्रमण करना सम्भव न हो सके। लायड जार्ज, विल्सन के 14 सूत्रों में से कुछ को मानने के लिए तैयार था। परन्तु वह यह भी नहीं चाहता था कि फ्रांस इतना शक्तिशाली बना दिया जाये कि यूरोप का शक्ति संतुलन बिगड़ जाये। वह जर्मनी की नाविक शक्ति को भी कम करना चाहता था तथा ब्रिटेन के लिये लूट के माल में अधिकाधिक हिस्सा भी प्राप्त करना चाहता था। ओरलेण्डो ने फ्यूम के बंदरगाह की मांग की थी, जिसे विल्सन ने स्वीकार नहीं किया। अतः वह सम्मेलन बीच में छोड़कर चला गया।

पेरिस शांति सम्मेलन में पराजित राष्ट्रों को विजेताओं की प्रतिशोध की भावना से नहीं बचाया जा सका। इस शांति सम्मेलन में देशी राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में बीकानेर के महाराजा गंगा सिंह ने भाग लिया। शांति के नाम पर इस सम्मेलन में पराजितों के साथ अनेक संधियां की गई।

1. आस्ट्रिया–हंगरी का साम्राज्य भंग करके आस्ट्रिया के साथ 'सेन्ट जर्मन' की संधि की गई। इसके द्वारा इटली को आस्ट्रिया से दक्षिणी टिरोल, ट्रेन्टिनो, इस्ट्रिया एवं डालमेशिया के तटवर्ती कुछ द्वीप प्राप्त हुये।
2. हंगरी के साथ 'ट्रियानो' की संधि की गई। हंगरी ने 'गेर मेम्यार' लोगों पर से अपना अधिकार छोड़ दिया। हंगरी की सेना घटाकर 35 हजार कर दी गई तथा उसकी नौ सेना भंग कर दी गई।
3. बल्गेरिया के साथ 'न्यूली' की संधि की गई। बल्गेरिया को प्रथम विश्व युद्ध तथा बाल्कन युद्धों में जीते हुये सारे प्रदेश लौटाने पड़े। उसकी सैनिक संख्या घटाकर 33 हजार कर दी, उसे 5 लाख डालर की राशि क्षतिपूर्ति के रूप में देनी पड़ी।
4. तुर्की ने भी जर्मनी के समर्थन में युद्ध किया था, अतः उसके साथ 'सेब्रे' की संधि की गई, जिसके अनुसार डोडेकनीज द्वीप समूह, रोड्स के प्रदेश इटली को दिये गये। डाडेनल्स के जलडलमरूमध्य को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र घोषित किया। तुर्की की सैनिक संख्या 50 हजार निश्चित कर दी गई। किन्तु तुर्की में तरूण तुर्क आंदोलन के कारण 'सेब्रे' की संधि के स्थान पर 1923 में 'लुसान' की संधि करनी पड़ी, जिसके अनुसार उसे बहुत सा खोया हुआ भू–भाग प्राप्त हुआ।
5. वर्साय की संधि पेरिस के शांति सम्मेलन में अनेक संधिया की गई किन्तु इन सभी संधियों में जर्मनी के साथ की गई 'वर्साय की संधि' महत्वपूर्ण थी। 28 जून 1919 को इस अपमान जनक संधि पर जर्मनी को हस्ताक्षर करने पड़े। इस संधि के अनुसार जर्मनी को

अल्सास–लारेन के प्रांत फ्रांस को देने पड़े। खनिज पदार्थों से सम्पन्न जर्मनी की 'सार घाटी' दोहन हेतु 15 वर्षों के लिए फ्रांस को दे दी गई। किंतु सार–प्रदेश पर नियंत्रण राष्ट्रसंघ का स्थापित किया गया।

6. जर्मन अधिकृत 'श्लेसविग' में जनमत संग्रह किया गया। जिस के आधार पर उत्तरी श्लेसविग डेनमार्क को दिया गया। इस संधि में जर्मनी, आस्ट्रिया और रूस के पोल क्षेत्रों को लेकर स्वतंत्र पोलैण्ड का निर्माण किया गया। जर्मनी को डेन्जिग का बंदरगाह राष्ट्रसंघ के संरक्षण में छोड़ना पड़ा। जर्मनी को समुद्रपार के अपने विस्तृत उपनिवेशों पर सारे अधिकार मित्र राष्ट्रों को देने पड़े। राष्ट्रसंघ द्वारा उसके उपनिवेशों को मेण्डेट पद्धति के अन्तर्गत ब्रिटेन, फ्रांस, जापान, आस्ट्रिया, दक्षिणी अफ्रीका आदि में बांट दिये गये।

वर्साय की संधि द्वारा जर्मनी को सैनिक रूप से भी पंगु बना दिया गया था ताकि भविष्य में यूरोप की शांति भंग न हो सके जर्मनी में अनिवार्य सैनिक सेवा समाप्त कर दी गई, जर्मनी की थल सेना अधिकारियों सहित एक लाख निर्धारित की गई। राइन नदी के पूर्वी तट पर किलेबंदी करने से मना कर दिया गया। उसे वायु सेना रखने का भी निषेध कर दिया गया। उसकी नौ–सैनिक शक्ति को भी सीमित कर दिया गया। इन सब व्यवस्थाओं के अतिरिक्त 5 अरब डालर की राशि क्षतिपूर्ति के रूप में 1921 तक देने को मजबूर किया गया। जर्मनी को युद्ध का उत्तरदायित्व भी स्वीकार करना पड़ा।

पेरिस शांति सम्मेलन के सम्बन्ध में निष्कर्ष के रूप में यही कहा जा सकता है कि यदि वार्ता के समय जर्मनी को भी सम्मिलित कर लिया जाता, तो वर्साय की संधि इतनी कठोर तथा अपमान जनक सिद्ध नहीं होती। जर्मनी के आर्थिक स्रोतों पर अधिकार करने के बाद भी उसे क्षतिपूर्ति की राशि चुकाने के लिए बाध्य किया गया जो अनुचित था। लेकिन हमे यह भी नहीं भूलना चाहिए कि जर्मनी ने युद्ध का समर्थन किया। अतः यह जरूरी हो जाता है कि जो राष्ट्र अकारण ही आक्रांता बन जाता है। उसे यह शिक्षा मिलनी चाहिये और पड़ोसियों पर हमला करने वालों के भाग्य पर ऐसी ही मोहर लगनी चाहिये।

प्रथम विश्व युद्ध के परिणाम

1. राजनीतिक परिणाम

I. निरंकुश राजतंत्रों की समाप्तिः– प्रथम विश्व युद्ध के बाद यूरोप का मानचित्र बदल गया था। इस विश्व युद्ध ने जर्मनी, रूस, आस्ट्रिया तथा तुर्की के निरंकुश राजतंत्रों को समाप्त कर दिया। राजवंशों के पतन के साथ ही उन पर आश्रित सामंत प्रथा भी समाप्त होगई।

II. लोकतंत्र का विकासः– प्रथम विश्व युद्ध के बाद हालैण्ड, अमेरिका आदि मित्र राष्ट्रों ने घोषणा की थी कि वे लोकतंत्र की रक्षा के लिये युद्ध लड़ रहे हैं। अतः नवनिर्मित राज्यों एवं समस्त पराजित राष्ट्रों में लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था कायम की गई। हंगरी, पौलेण्ड, चेकोस्लोवाकिया, लिथुआनिया, एस्टोनिया, लेटविया आदि में जनतंत्रात्मक शासन की स्थापना हुई। तुर्की के शासक मुस्तफा कमालपाशा ने गणतंत्रात्मक सरकार की स्थापना की।

III. राष्ट्रीयता की भावना एवं नवीन राज्यों का उदयः– राष्ट्रीयता नये यूरोप के राजनीतिक जीवन की आधारशिला थी शांति संधियों द्वारा विश्व मानचित्र पर अनेक परिवर्तन किये गये। चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, लिथुआनिया, एस्टोनिया, फिनलैण्ड पोलैण्ड आदि नये राज्यों का उदय हुआ। एशिया के पिछड़े देशों में राष्ट्रीयता की लहर आई और वहां की जनता ने भी स्वतंत्र होने के लिये आंदोलन छेड़ दिया। भारत का असहयोग आंदोलन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

IV. नवीन वादों का उदयः– उन्नीसवीं सदी के अंत तक यूरोप के अनेक देशों में 'समाजवाद' की लहर पहुच चुकी थी। 1917 में रूस में बोल्शेविक क्रांति हुई, जिससे साम्यवाद का प्रभाव बढ़ा। इटली में फासिस्टवाद, जर्मनी में नाजीवाद और जापान में सैन्यवाद का उदय हुआ। जिसके कारण विश्व में पुनः तनाव का वातावरण बन गया।

V. संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रभाव में वृद्धिः– युद्ध के बाद अमेरिका के प्रभाव में अत्यधिक वृद्धि हुई और वह यूरोपीय राष्ट्रों का मुखिया बन गया। उसका व्यापार दिन दूना और रात चौगुना हो गया। अमेरिका ने अनेक राष्ट्रो को एक खरब बीस अरब डालर का कर्ज दे रखा था। इस समय जर्मनी का व्यापार

वाणिज्य समाप्त हो गया था, जिस के कारण अमेरिका का सम्पूर्ण यूरोप के व्यापार–वाणिज्य पर नियत्रंण हो गया।

VI. शस्त्रीकरण की होड़ः–वर्साय की संधि के अन्तर्गत निःशस्त्रीकरण योजना थी, जिसका प्रयोग धुरी राष्ट्रो सहित जर्मनी को शक्तिहीन करने के लिये हुआ था। इससे निःशस्त्रीकरण के बजाय शस्त्रीकरण की भावना ही प्रबल हुई। आधुनिक अस्त्र–शस्त्रों का निर्माण होने लगा और इसी होड़ ने द्वितीय महायुद्ध का मार्ग खोल दिया।

2. आर्थिक परिणाम

1. आर्थिक विनाशः– जब 11 नवम्बर 1918 ई. को युद्ध विराम की घोषणा से युद्ध समाप्त हुआ तो खून से सनी मानवता सवा चार वर्ष के महाविनाश का मूल्य आंकने को तत्पर हुई। इस युद्ध में 10 खरब रूपया प्रत्यक्ष रूप से खर्च हुआ और जान–माल की परोक्ष हानि का तो कोई अनुमान ही नहीं लगाया जा सकता।

2. जन शक्ति का महाविनाशः– सवा चार वर्ष के युद्ध में 80 लाख मृतकों एवं 2 करोड़ घायलों ने सिद्ध कर दिया कि यह युद्ध एक विनाशकारी युद्ध था। इस अवधि में 7 हजार व्यक्ति प्रतिदिन मरे। बड़ी संख्या में हत्याकाण्डो, भुखमरी, बीमारी से लोग मारे गये अपनी जनसंख्या के अनुपात में फ्रांस को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी। यहाँ तक कि अल्सास एवं लारेन पुनः प्राप्त होने परे भी फ्रांस की जनसंख्या उतनी न हुई जितनी कि फ्रांस को चार वर्ष के मार–काट मे खोनी पड़ी थी।

3. युद्ध ऋणः– युद्ध के असाधारण खर्च के कारण संसार के सार्वजनिक ऋणों में भी असाधारण रूप से वृद्धि हुई। 1914 ई. में दोनों पक्षों का सार्वजनिक ऋण 8 हजार करोड़ था, 1918 में यह बढ़कर पांच गुना 40 हजार करोड़ हो गया। इस युद्ध में कुल मिलाकर 13 हजार दो सौ करोड़ रूपयों की सम्पत्ति नष्ट हुई। इतनी भारी धन–राशि के विनाश का प्रभाव यह हुआ कि कीमतें बढ़ने लगी। मजदूरी की दर में वृद्धि के साथ ही उत्पादन में कमी आई। मुद्रा की कीमत कम होने लगी और व्यापार–व्यवसाय में अव्यवस्था उत्पन्न हो गई।

4. व्यापार का विनाशः– अरबों रूपये के विनाश से राष्ट्रों के व्यापार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। अब प्रत्येक राष्ट्र यह प्रयास कर रहा था कि वह अन्य देशों से कम से कम माल खरीदे और उन्हें अधिक से अधिक माल बेचे। ऐसा करने के लिये सरकारों ने तटकरों में भारी वृद्धि की, जिसके कारण विश्व व्यापार और भी कम हो गया। युद्ध के बाद अमेरिका, जापान तथा कुछ लैटिन देशों ने उन बाजारों में अपने पांव जमा लिये, जो पहले ब्रिटेन और जर्मनी के हांथो में थे। युद्ध के पूर्व अमेरिका एक कर्जदार देश था, युद्ध के बाद वह संसार का प्रमुख कर्ज देने वाला देश बन गया।

5. मुद्रा प्रसारः– अरबों रूपया खर्च कर युद्ध लड़ा गया था। यह राशि किसी उत्पादक कार्य में न लगाकर विनाश में लगायी गई थी। युद्ध में धन पानी की तरह बहाया गया, कल–कारखाने, रेलवे, जहाज अन्य सम्पत्ति का भी विनाश किया गया था। इस स्थिति में सभी राज्य अपने बढ़े हुये खर्चों को पूरा करने के लिए, ऋणों को चुकाने के लिये विशाल मात्रा में कागजी मुद्रा जारी कर दी, जिससे कीमतों में भारी वृद्धि हुई। कागजी मुद्रा का मूल्य बाजार में बहुत गिर गया। इस मुद्रास्फीति ने बचत को समाप्त कर दिया। जिससे आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया।

3. सामाजिक परिणाम

1. अल्पसंख्यकों की समस्या के समाधान का प्रयत्नः– पेरिस सम्मेलन में यह समस्या स्पष्ट रूप से सामने आयी कि विदेशों में स्थायी रूप से बस चुके अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा कैसे की जाये। मुख्यतः यह समस्या पोलैण्ड, चेकोस्लोवकिया आदि नये राज्यों में ही नही अपितु आस्ट्रिया, हंगरी, बल्गेरिया और तुर्की में भी थी। यहां भी बहुत से ऐसे लोग बस गये थे, जो राष्ट्रीयता की दृष्टि से उस देश के नागरिक नहीं थे। पेरिस शांति परिषद ने पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया आदि को इस बात के लिये विवश किया कि वे अपने राज्य में स्थायी रूप से बस चुके अल्पसंख्यक जातियों की भाषा, धर्म संस्कृति आदि की रक्षा करने की गारंटी दे किंतु पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया रूमानिया, यूनान, यूगोस्लाविया और तुर्की इस प्रकार की गारण्टी के विरूद्ध थे। फलस्वरूप अल्पसंख्यक जातियों की समस्या का कोई स्थायी समाधान नहीं हो सका और इन अल्पसंख्यकों में अपनी पृथकता की भावना बनी रही।

2. स्त्रियों की स्थिति में सुधारः–प्रथम विश्व युद्ध के चार वर्षों के दौरान ज्यादा से ज्यादा पुरूषों की आवश्यकता युद्ध क्षेत्र में होती थी। युद्ध जनित परिस्थितियों में स्त्रियों की परम्परागत भूमिका के अलावा, समाज में यह अपेक्षा की जाने लगी कि

उनके द्वारा दिया गया योगदान पर्याप्त नहीं है। स्त्रियों ने कारखानों तथा दुकानों में कार्य करना शुरू किया और वे अब उन कार्यों को भी कर रहीं थी जिन्हें अब तक पुरूष वर्ग करता था। इसके बाद हर राष्ट्र में स्त्रियों को ज्यादा प्रतिनिधित्व और अधिकार दिये जाने की बात उठने लगी।

3. नस्लों की समानताः— 19वीं सदी की समाप्ति तक यूरोप के लोगों में अपने वर्ग और नस्ल की उत्कृष्टता की भावना बहुत प्रबल थी, ये लोग एशिया और अफ्रीका के काले, भूरे, पीले रंग के लोगों को अपने से हीन समझते थे परंतु युद्ध की आवश्यकता से विवश होकर भारत, जापान और अफ्रीका के सैनिकों को भी यूरोप भेजा गया था, जहां उन्होंने युद्ध में गोरे सैनिकों के समान ही शौर्य दिखाया था, अतः यूरोपीय नस्लों की उत्कृष्टता का विचार निराधार साबित हुआ।

4. विश्व संस्थाओं का विकासः— प्रथम विश्व युद्ध से उत्पन्न सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं के निराकरण के लिये कई विश्व संस्थाओं की स्थापना की गई। मादक वस्तुओं के व्यापार को रोकने का प्रबन्ध किया गया। श्रमिकों के कल्याण और राजनीतिक समस्याओं के समाधान हेतु 'अंतर्राष्ट्रीय श्रमसंघ' एवम् 'राष्ट्रसंघ' की स्थापना की गई। इससे अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ।

इस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध के परिणाम बड़े दूरगामी सिद्ध हुये, इसके कारण विश्व की आर्थिक और सामाजिक अवस्था पर अत्यधिक गंभीर प्रभाव पड़े और आने वाले कई वर्षो तक इसकी क्षतिपूर्ति न हो सकी।

प्रथम महायुद्ध और भारत

इंग्लैण्ड के अनेक उपनिवेशो में एक उपनिवेश भारत भी था, जो सबसे विशाल तथा महत्वपूर्ण था। इंग्लैण्ड की सम्पन्नता तथा औद्योगिक साम्राज्य का आधार भारत था।

युद्ध में भारत की भूमिकाः— भारतीयों का इस युद्ध से सीधा सम्बन्ध नहीं था, फिर भी इंग्लैण्ड ने युद्ध शुरू होते ही भारत को इसमें सम्मिलित कर लिया। जब कि यह युद्ध इंग्लैण्ड के हितों का युद्ध था। 1914 में प्रथम विश्व युद्ध की घोषणा से देश के राजनैतिक वातावरण में जबरदस्त परिवर्तन हुआ। इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री ने युद्ध में जर्मनी की हार को संसार भर में जनतंत्रवाद की सुरक्षा के लिये आवश्यक बताया और इस युद्ध में भारतीयों से मदद मांगी। इससे कांग्रेस के उदारवादी नेताओं को लगा कि इंग्लैण्ड लोकतंत्रवाद के लिये युद्ध कर रहा है और युद्ध के बाद वह भारत को भी जनतंत्रवाद की दिशा में कुछ देगा। उदारवादियों ने तन—मन और धन से इंग्लैण्ड की सहायता करने का निश्चय किया जनवरी 1915 में महात्मा गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो कांग्रेस का उदारवादी नेतृत्व प्रथम विश्व युद्ध में अंग्रेजों की मदद में लगा हुआ था। गांधीजी भारतीय राजनीति में ब्रिटिश सरकार के सहयोगी के रूप में आये। उन्होंने भारतीयों को ब्रिटिश सरकार को जन—धन से सहायता करने को प्रेरित किया। उन्हें लगा कि अंग्रेज इस महायुद्ध में उच्च सिद्धान्तों की रक्षा के लिए लड़ रहे हैं।

1914 में छिड़े प्रथम महायुद्ध ने लोकमान्य तिलक और क्रान्तिकारियों को झकझोरा, उन्हें उद्वेलित किया। वे गांधी जी और नरम पंथियों की तरह अंग्रेजों का साथ नहीं देना चाहते थे। तिलक का विचार था कि ब्रिटेन पर किसी भी तरह का संकट भारत के हित में है, उसके लिये एक मौका है। तिलक, एनी बेसेण्ट और क्रान्तिकारियों का आकलन था कि अंग्रेज इस समय परिस्थितियों बस भारतीयों से मदद मांग रहे हैं, युद्ध के बाद वे फिर से अपनी नीति पर चलेंगे और भारत का भला बिना किसी प्रचंड आंदोलन के होने वाला नहीं है। युद्ध के बाद अंग्रेजों के क्रियाकलापों से यह अच्छी तरह से स्पष्ट हो गया कि तिलक का आकलन सही था।

उपर्युक्त विरोधाभास के बावजूद भारत की शोषित जनता ने अपने समस्त संसाधनों के साथ ब्रिटेन की सबसे संकट पूर्ण समय में इस आशा के साथ सहायता की कि युद्ध के पश्चात् उन्हें राजनीतिक अधिकार अवश्य दिये जायेंगे। प्रथम विश्वयुद्ध में विभिन्न मोर्चों पर लड़ने के लिये भारत में बड़ी संख्या में सैनिक भर्ती किये गये। हथियार गोला बारूद युद्ध सामग्री के अतिरिक्त बड़ी मात्रा में गेहूँ, चावल, चाय, कपास, जूट, रबड़, कोयला, लोहा तथा इस्पात भेजा गया था। भारत की देशी रियासतों ने भी भरपूर आर्थिक तथा सैनिक सहायता भेजी। अनेक देशी राजाओं ने युद्ध के मोर्चे पर अपनी सेना के साथ युद्ध किया। भारत ने इस युद्ध के लिये 10 करोड़ पौंड युद्ध कोष में दिये थे। यही नहीं अपनी सेनाओं पर 30 करोड़ पौण्ड

प्रतिवर्ष खर्च किये। इसमें कोई संदेह नहीं कि ब्रिटेन की प्रतिष्ठा का यह युद्ध भारत की जनता की कीमत पर लड़ा गया तथा जीता गया।

प्रथम विश्वयुद्ध का भारत पर प्रभाव

सरकार ने यह आवश्वासन दिया था कि युद्ध के पश्चात् भारतीयों को अधिक सुविधायें दी जायेगी। अंग्रेजों ने भारतीयों के साथ छल किया उनकी आशा के विपरीत अकाल, महामारी, आर्थिक, शोषण, प्रेस के कठोर नियम और अन्य दमनकारी नीतियां मिली। इंग्लैण्ड आतंकवादी गतिविधियों को दबाने के नाम पर 'रौलट बिल' के माध्यम से भारतीयों के मौलिक अधिकारों का हनन करना चाहता था। यह कानून ऐसे समय पर आया जब भारतीय जनता संवैधानिक सुधारों का इंतजार कर रही थी। गांधी जी को यह लगता था कि अंग्रेज न्याय प्रिय हैं। और युद्ध के पश्चात् भारत की स्वाधीनता के लिये सही दिशा में काम करेंगे, परंतु उनका स्वप्न शीघ्र ही टूट गया।

रौलट एक्ट ने गांधीजी की राजभक्ति को गहरा आघात पहुंचाया। युद्ध काल में उन्होंने ब्रिटिश सरकार की जो सहायता की थी उसका यही पुरस्कार उन्हें मिला। इस कानून के द्वारा अब सरकार किसी भी व्यक्ति को खतरनाक समझने पर बिना मुकदमा चलाये जेल में रख सकती थी। यह अधिनियम 'काले कानून' के नाम से कुख्यात है। उसका विरोध होना स्वाभाविक था। लेकिन अंग्रेजों ने अपना उत्तर जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड के द्वारा दिया। 1919 का भारत सरकार अधिनियम भारतीयों की आशाओं पर भीषण प्रहार था। यह उन्हें स्वशासन देने में असफल रहा। यही नहीं युद्ध के पश्चात् सेब्रे की संधि द्वारा तुर्की साम्राज्य को विभाजित कर दिया। खलीफा को हटाकर कुस्तुनतुनिया में नजरबंद कर दिया। भारतीय मुसलमानोंमें इस की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने खिलाफत आंदोलन द्वारा इस विश्वासघात का विरोध किया। महात्मा गांधी ने हिन्दू–मुस्लिम एकता को सुदृढ़ करने हेतु इस अवसर का प्रयोग किया। गांधीजी के परामर्श से कांग्रेस ने अंग्रेजों से दीर्घकालीन संघर्ष हेतु असहयोग आंदोलन और खिलाफत आंदोलन एक साथ चलाने का निर्णय किया।

खिलाफत आंदोलन खलीफा पद की पुर्नस्थापना का आंदोलन था। इसमें गांधीजी के सहयोग से अल्पकालिक लाभ अवश्य हुआ। कुछ मुसलमानों ने कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेना प्रारंभ किया, परंतु खिलाफत का प्रश्न समाप्त होते ही हिन्दू–मुस्लिम एकता ज्यादा देर तक न रह सकी। मुसलमानों का तुर्की के प्रति यह प्रेम वास्तव में राष्ट्रीय न होकर मजहबी था। ऐसे मुसलमान अपना राष्ट्रीय मूल्य अन्यत्र खोजते थे, जब कि मुगल सम्राटों ने भारत के बाहर किसी भी खलीफा या आध्यात्मिक नेता को मान्यता नहीं दी थी। मोहम्मद करीम छागला ने जो स्वतंत्र भारत के मुख्य न्यायाधीश रहे, खिलाफत आंदोलन को राष्ट्रीय आंदोलन के साथ जोड़ने को एक बड़ी गलती कहा है, क्यों कि इससे मुसलमानों में देश बाहय निष्ठा पैदा हुई। अतः इससे साम्प्रदायिक नेतृत्व को बढ़ावा मिला।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि अंग्रेजों ने भारतीयों को प्रथम विश्वयुद्ध के बलिदानों के प्रत्युत्तर में दमन और विश्वासघात ही दिया। लेकिन इससे राष्ट्रीय आंदोलन के समर्थन में वृद्धि अवश्य हुई।

1917 ई. की रूस की क्रांति– लेनिन, स्टालिन

पूरब से पश्चिम की ओर विस्तृत, विशालकाय देश, रूस, विश्व के सकल स्थल भू–भाग का 1/6 भाग प्राप्त कर, अपनी विशाल आकृति के कारण 'महाशक्ति' शब्द को सार्थक करता प्रतीत होता था। उसकी विशालता उसकी शक्ति का स्रोत थी तो अड़चनों का कारण भी थी। एशियाई और यूरोपीय महाद्वीपों में तो रूस स्वयं फैला हुआ था ही, उत्तरी अमेरिका की सरहदों का भी इसकी सीमायें स्पर्श करती थी। पड़ोसियों से तनाव उसकी विदेश नीति में परिलक्षित होती रहती थी। अपनी सीमाओं की सुरक्षा, काला सागर में निर्बाध आवागमन, मानचित्र से मिटने वाले राज्यों की लूट में अपना यथेष्ट हिस्सा, मध्य एशिया में ब्रिटेन की महत्वाकांक्षाओं पर रोक लगाना, पूर्वी एशिया में जापानी साम्राज्य विस्तार को रोकते हुये अपना प्रभुत्व कायम रखना उसकी विदेश नीति के प्रमुख उद्देश्य थे।

क्रांति से पूर्व की स्थिति

जापान से 1904–05 ई. के युद्ध में पराजित होकर रूस की मिथकीय श्रेष्ठता छिन्न–भिन्न हो गई। एशियाई बौने ने यूरोपीय दैत्य को पटखनी देकर न केवल उसकी विदेश

नीति, आर्थिक घरेलू राजनीति को प्रभावित किया, बल्कि रूस की श्रेष्ठता के तिलिस्म को भी तोड़ दिया। इस पराजय ने रूसी जार (शासक) की दुर्बलता को उजागर कर दिया। पराजय की निराशा ने रूसी लोगों को रोटी और अन्य अधिकारों की ओर सोचने को प्रवृत्त किया। जब कि रूस के निरंकुश जार अभी भी सामान्य जन से अपनी दुर्बलताओं को छुपाये रखने में लगे हुये थे। रूस की जनता भूख, बेकारी और अव्यवस्था तथा आर्थिक–सामाजिक विपन्नता में जी रही थी। परन्तु जार निकोलस द्वितीय अभी भी अपनी निरंकुशता के लिये उद्यत था। रूस के समाज को कुलीन, मध्यम और सर्वहारा वर्ग की तीन श्रेणियों में मोटे तौर पर बांटा जा सकता था।

रूसी पंचांग

1917 ई. की बोल्शेविक क्रांति तक के रूसी इतिहास की तिथियों को लेकर भ्रम की स्थिति से बचने के लिये यहां यह बताना आवश्यक है कि 1917 ई. की क्रांति तक रूस में दो कैलेण्डर प्रचलित थे– जूलियन पद्धति और ग्रेगोरियन पद्धति। दोनों पंचांगो की तिथियों में 13 दिन का अंतर था। क्रांति के पश्चात् वहाँ भी ग्रगोरियन कैलेण्डर प्रचलित हो गया, अतः तिथियां 13 दिन आगे बढ़ानी पड़ी। बोल्शेविक क्रांति पुरानी जंत्री के अनुसार 25 अक्टूबर, 1917 ई. को सम्पन्न हुई। अतः इसे अक्टूबर क्रांति के नाम से भी जाना जाता है। परन्तु नये पंचांग के अनुसार वह तिथि 7 नवम्बर, 1917 ई. थी।

1917 ई. की रूस को बोल्शेविक क्रांति को तीन क्रांतियों के संकुल के रूप में देखा जाये तो परिस्थितियां अधिक स्पष्ट हो सकेगी। 1905 ई. की क्रांति भले ही सफल न रह सकी हो, परंतु इसने नीव का काम किया। 1917 ई. की फरवरी (मार्च) की क्रांति ने जारशाही का उच्छेदन कर राजनीतिक इतिहास को एक नया मोड़ दिया तथा 1917 ई. की अक्टूबर (नवम्बर) की क्रांति ने आर्थिक स्वतंत्रता को अधिक महत्वपूर्ण बना दिया। यह क्रांति किसी एक दिन घटी कोई घटना नहीं थी, बल्कि यह घटनाओं की एक श्रृंखला–सी प्रतीत होती है। क्रांति से पूर्व के वर्षों में रूस की जनता के विभिन्न वर्गों में विभिन्न कारणों से असंतोष और विरोध की भावना बहुत अधिक बढ़ती जा रही थी। शासन की स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश नीतियां इस असंतोष की जनक थी।

अन्य क्रांतियों की भांति 1917 ई. की रूसी क्रांति के कुछ मौलिक कारण तो उसके पिछले एक शताब्दी के इतिहास के गर्भ में छिपे थे और कुछ तात्कालिक परिस्थितियों ने रूस में व्याप्त असंतोष का एकाएक विस्फोट कर दिया। क्रांति के दीर्घकालिक एवं तात्कालिक कारण निम्नलिखित थे।

रूसी क्रांति के कारण

1. जारशाही की निरंकुशताः– रूस के सम्राट अत्यधिक निरंकुश थे। वे अपने को किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं समझते थे। वे इवान चतुर्थ के सिद्धांत पर आचरण करते थे। इवान ने घोषणा की थी ''जार रूस का एकाधिपति है।'' इसी प्रकार पीटर महान् का कहना था कि ''जार दुनिया में किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं है।'' इतनी ही स्वेच्छाचारिणी केथेराइन महान थी। इससे स्पष्ट है कि स्वेच्छारिता ही रूसी जार का एकमात्र उद्देश्य था। जार अलेक्जेण्डर प्रथम (1801–1825 ई.) ने कुछ उदारता की नीति अपनाने का प्रयत्न किया था किन्तु पौलेण्ड़ के विद्रोह एवं अन्य बाह्य प्रभावों के कारण उसने पुनः प्रतिक्रियावादी नीति अपना ली। जार अलेक्जेण्डर द्वितीय (1858–81 ई.) ने भी उदारवादी दृष्टिकोण अपनाकर कृषक–दासों की मुक्ति एवं स्थानीय स्वशासन सम्बन्धी सुधार किये किन्तु सामंतों के विरोध के कारण उसे पुनः प्रतिक्रियावादी नीति अपनानी पड़ी।

इसी काल में जार के निरंकुश एवं कठोर शासन के विरूद्ध कुछ क्रान्तिकारी एवं आतंकवादी संस्थाओं की स्थापना हुई, जो गुप्त रूप से अपना कार्य करती रहीं। विद्यार्थियों ने भी समाजवादी विचारों से प्रभावित होकर क्रांतिकारी आन्दोलन को आगे बढ़ाने में योगदान दिया। अन्त में एक आतंकवादी ने जार अलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या कर दी। जार अलेक्जेण्डर तृतीय (1881–1894 ई.) ने अपने पिता की हत्या से यह सबक सीखा कि कठोर और दमनकारी नीति द्वारा ही सम्राट की सत्ता को सुरक्षित रखा जा सकता है। निकोलस द्वितीय (1894–1917 ई.) ने भी इसी नीति का पालन किया किन्तु 1905 ई. की क्रांति के फलस्वरूप उसे सुधारवादियों को संतुष्ट करने के लिए 'डयूमा' का निर्वाचन कराने की घोषण करनी पड़ी। किन्तु 'डयूमा' को भी उसने जनता की प्रतिनिध सभा के वास्तविक अधिकारी होने से वंचित रखा और स्टालीपिन की सहायता से

पुनः प्रतिक्रियावादी शासन स्थापित कर लिया। निकोलस द्वितीय के अंतिम वर्षों में रासपुटीन जैसे दुष्टात्मा का प्रभाव सर्वोपरि रहा, जो साम्राज्य के लिए अनिष्टकारी रहा। उस तथाकथित 'पवित्र साधु' के प्रति जारीना की अन्ध–भक्ति के कारण शासन के प्रत्येक कार्य में रासपुटीन का हस्तक्षेप होने लगा। यही कारण था कि 1916 ई. में विरोधियों ने रासपुटीन की हत्या कर दी।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक यूरोप के प्रमुख देशों में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की स्थापना हो चुकी थी किन्तु रूस में नागरिकों के कोई अधिकार नहीं थे। वहाँ शासन का विरोध करने वालों को कठोर से कठोर दण्ड दिया जाता था। ऐसी दमनकारी व्यवस्था के कारण जार का निरंकुश शासन अब असहनीय हो गया था और जनता के कुछ प्रबुद्ध नेता सुधारों की मांग करने लगे थे। जैसे–जैसे जारशाही के अत्याचार बढ़ते गये वैसे–वैसे उसके प्रति जनता का असंतोष एवं विरोध भी बढ़ता जा रहा था।

2. 1905 की क्रांति तथा ड्यूमा के प्रभाव को कुचलने का प्रयासः– वर्ष 1904–05 ई. में रूस–जपान युद्ध हुआ। इस युद्ध में रूस की छोटे से जापान के हाथों पराजय हुई। पहले क्रीमिया और अब रूस–जापान युद्ध में पराजय के कारण सरकार की अक्षमता जनता के सामने आ गई और यह भी स्पष्ट हो गया कि रूस में सुधारों की आवश्यकता है। 22 जनवरी, 1905 ई. को रविवार के दिन लगभग डेढ़ लाख मजदूरों ने पादरी ''गैपों'' के नेतृत्व में जार के सम्मुख अपनी राजनीतिक और औद्योगिक मांगों को मनवाने के लिए प्रदर्शन किया। ये शान्तिपूर्वक प्रदर्शन कर आगे बढ़ रहे थे किन्तु जार के सैनिकों ने निहत्थे लोगों पर आक्रमण कर 130 व्यक्तियों को मार दिया। गैपों को कोई चोट नहीं लगी परन्तु बाद में 1906 ई. में क्रान्तिकारियों ने उसे कत्ल कर दिया क्यों कि उनका अनुमान था कि वह एक सरकारी जासूस था। 1905 ई. की इस 'खूनी रविवार' की घटना का रूसी इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है।

परिस्थिति पर काबू पाने के उद्देश्य से जार ने 30 अक्टूबर, 1905 को शासन–सुधारों की घोषणा की। इसके द्वारा लोगों को भाषण देने, विचार प्रकट करने और संघ बनाने की स्वतंत्रता प्रदान की गई। यह घोषणा शासन–तंत्र द्वारा आत्मसमर्पण जैसा ही था।किन्तु असंतोष के कम होते ही जार ने ड्यूमा को संसद का प्रथम सदन मानकर ''साम्राज्य परिषद'' के नाम से दूसरे सदन का निर्माण किया, जिसके सदस्य सम्राट द्वारा नियुक्त किये जाने थे। हेजन के अनुसार, ''ड्यूमा जो कि विधि निर्मात्री संस्था होनी थी तथा जिसको राज्याधिकारियों की देखभाल का अधिकार प्राप्त होना था, परन्तु इसके अधिवेशन आरम्भ होने के पूर्व ही इसके पर काट दिये गये। यही नहीं, जार निकोलस ड्यूमा की शक्ति को नष्ट भी करना चाहता था, अतः जब मार्च, 1906 के निर्वाचन में ड्यूमा के अनुदार दल को कम सफलता मिली, तो जार ने उसके प्रथम अधिवेशन में ही ड्यूमा का विघटन कर दिया। मार्च, 1907 ई. में ड्यूमा का दूसरा अधिवेशन हुआ, तो उसका भी विघटन कर दिया। इससे जनता में जार के प्रति अविश्वास बढ़ने लगा। 1905 ई. की क्रांति के फलस्वरूप प्राप्त किये गये अपने अधिकारों को इस प्रकार पुनः छिनता हुआ देखकर जनता भीतर ही भीतर तिलमिला उठी।

3. कृषकों की दयनीय दशाः– रूस एक कृषि प्रधान देश था। वहां कृषकों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। जार अलेक्जेण्डर द्वितीय द्वारा 1861 ई. में कृषि–दासों की मुक्ति की घोषणा के उपरान्त भी कृषकों की स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। रूस में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक बीस हजार बड़े जमींदारों के पास लगभग 1800 लाख एकड़ भूमि थी, जबकि एक करोड़ से अधिक कृषकों के पास केवल 1900 लाख एकड़ भूमि थी। रूस की समस्त कृषक जनसंख्या का एक तिहाई भाग भूमिहीन था। भूमिहीन कृषकों को जमींदारों की भूमि पर काम करना पड़ता था। इन्हें कई तरह के करों का भुगतान भी करना पड़ता था, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति अधिक चिन्तनीय हो गयी थी। कृषि दासों की मुक्ति का नियम भी रूस के सभी प्रान्तों में लागू नहीं किया गया था। कृषकों को दोनों समय का भोजन भी उपलब्ध नहीं होता था। पहले वे भूमिकर में कमी एवं सुविधा–अधिकारों की समाप्ति की मांग करते रहे किन्तु जब उनकी मांगों की अवहेलना की गयी, तो वे अधिक उग्र हो गये। क्रांतिकारी समाजवादी दल ने इन कृषकों की स्थिति का लाभ उठाया और उन्हें शासन के विरूद्ध उत्तेजित किया। 1905 ई. में समस्त कृषक प्रतिनिधियों का मास्को में एक सम्मेलन हुआ, जिसमें ''रूसी कृषक संघ'' बनाने का निर्णय लिया। फलस्वरूप 1906 ई. के कानून को 'कम्यून' से अपनी भूमि अलग करने का अधिकार दिया गया। इन कानूनों से कुछ ही कृषकों को लाभ हुआ किन्तु भूमिहीन

किसानों की समस्या सुलझ नहीं सकी और कृषकों की दरिद्रता में भी कमी नहीं हुई। ऐसी स्थिति में कृषकों का विद्रोही होना अवश्यम्भावी हो गया।

4. श्रमिकों का अंसतोषः— यद्यपि इस समय रूस एक कृषि प्रधान देश था फिर भी औद्योगिक क्रांति का प्रभाव वहाँ दिखाई देने लगा। अलेक्जेण्डर तृतीय के समय में औद्योगीकरण की गति में तीव्रता आयी। हजारों की संख्या में भूमिहीन कृषक इन आद्योगिक केन्द्रों पर रोजगार के लिए पहुँचे। उद्योगपतियों ने उनकी असहाय एवं दयनीय स्थिति का पूरा लाभ उठाया और उनसे न्यूनतम मजदूरी पर अधिक से अधिक कार्य लिया। इनकी मजदूरी इतनी कम थी कि उनका जीवन—निर्वाह कठिन होने लगा। इन कठिनाईयों को दूर करने के लिए वे अपने मालिकों से कुछ भी नहीं मांग सकते थे और न 'मजदूर संघ' ही बना सकते थे। 1885 ई. के बाद यद्यपि कुछ श्रमिक कानून बनाये गये लेकिन मजदूरों की स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं आया क्योंकि शासन की नीति मूलतः उद्योगपतियों के हितों की रक्षा करने की थी। क्रान्तिकारी समाजवादी दल ने मजदूरों के इस असंतोष का लाभ उठाकर उनमें समाजवादी सिद्धान्तों का प्रचार किया। 1902—03 ई. से ही मजदूरों की हड़तालें आरम्भ हो गयी थीं। 1905 ई. की क्रांति का आरम्भ भी मजदूरों के जुलूस से ही हुआ था। इस समय मजदूरों की शक्ति इतनी बढ़ गयी थी कि उन्होंने सेन्ट पीटर्सवर्ग में अपनी अलग सरकार बना ली। ये मजदूर पूँजीवादी व्यवस्था एवं जारशाही की निरंकुशता को समाप्त कर 'सर्वहारा वर्ग' का शासन स्थापित करना चाहते थे।

5. आर्थिक एवं सामाजिक विषमताः—इस समय रूस की सामाजिक स्थिति वैसी ही थी, जैसी 1789 ई. से पूर्व फ्रांस की थी। समस्त रूसी समाज दो भागों में विभक्त किया जा सकता था—प्रथम, अधिकार युक्त वर्ग—जिसमें जार के कृपा प्राप्त कुलीन लोग थे। ये लोग जार की निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारिता को आवश्यक समझते थे। यह वर्ग बहुत सम्पन्न था। राज्य के अधिकांश महत्वपूर्ण पदों पर तथा अधिकांश भूमि पर इन्होंने अधिकार कर रखा था। दूसरा वर्ग अधिकारहीन वर्ग था। इसमें किसान तथा मजदूर थे। इनकी आर्थिक स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। इनको कुलीन वर्ग के अत्याचारों को भी सहना पड़ता था। दास प्रथा की समाप्ति पर भी इस वर्ग की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। इस प्रकार रूसी समाज में भारी आर्थिक एवं सामाजिक विषमता थी। फलतः यह वर्ग—संघर्ष रूसी क्रांति का एक महत्वपूर्ण कारण बना।

6. जार की रूसीकरण की नीतिः— रूस की प्रजा विभिन्न जातियों के सम्मिश्रण से बनी थी। वहाँ कई धर्म प्रचलित थे, कई भाषाएँ थीं। रूस की जनता में यहूदी, पोल, फिन, उजबेग, तातार, कजाक, आर्मीनियन, रूसी आदि का समावेश था। इन सबकी अपनी—अपनी संस्कृति और सभ्यता थी। रूसी इन सब में प्रभावशाली होने के कारण शासक बन गये थे। इनको अन्य अल्पसंख्यक जातियों के साथ कोई हमदर्दी नहीं थी। इन अल्पसंख्यक जातियों के विरूद्ध जार अलेक्जेण्डर प्रथम के समय से ही ''रूसीकरण'' की नीति अपनाई गई और ''एक जार, एक धर्म'' का नारा अपनाया गया। गैर—रूसी जनता का दमन किया गया, इनकी भाषाओं पर प्रतिबन्ध लगाये गये, इनकी सम्पत्ति छीन ली गई। इस कारण गैर—रूसी जनता में असंतोष फैला और वह जारशाही के विरूद्ध हो गई। 1905 ई. में जार्जिया, पोलैण्ड और बाल्टिक सागर में भयानक विद्रोह हुये। जार निकोलस ने जिस प्रकार इन विद्रोहों को कुचलने के लिए इन पर अमानुषिक अत्याचार किये, उससे उनका विद्रोही होना स्वाभाविक ही था। इन्होंने भी जार के विरूद्ध आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया।

7. बौद्धिक क्रांतिः— रूस में कई वर्षों से पश्चिमी यूरोप के उदारवादी विचार प्रवेश कर रहे थे और जार तथा उसके प्रतिक्रियावादी पदाधिकारी उनका दमन करने में कोई कसर नहीं छोड रहे थे। फिर भी उदारवादी विचारों का यहाँ प्रसार हुआ। स्वयं रूस के टॉल्सटाय, तुर्गनेव, दोस्तोवस्की आदि उपन्यासकारों ने भी रूसी जीवन की विफलताओं की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया। इनके विचारों से लोगों में राजनैतिक जागृति उत्पन्न हुई। शिक्षित वर्ग राजनैतिक अधिकारों की मांग करने लगा। इनके साथ ही कार्ल मार्क्स, मैक्सिम गोर्की और बाकुनिन के समाजवादी विचारों का भी देश के श्रमिकों एवं बुद्धिजीवियों पर प्रभाव पड़ा। देश में कई समाजवादी दल बन गये थे, जिनका प्रभाव कृषकों और मजदूरों पर बढ़ रहा था। इसी समय समाज में शून्यवाद का उदय हुआ, जिसने प्रचीन व्यवस्थाओं को मिटाने का प्रयत्न किया। प्रिंस

कोप्टिकिन शून्यवाद का प्रमुख प्रचारक था।

8. रूस में समाजवाद का प्रसारः– पश्चिमी यूरोप के देशों में हुई औद्योगिक क्रांति का प्रभाव रूस पर भी पड़ना स्वाभाविक ही था। रूस में औद्योगिक क्रांति का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में हुआ था। वहाँ औद्योगिक देशों की तरह 'श्रमिक आन्दोलन' की भावना का प्रसार हुआ। यहाँ किसानों ने अपनी दयनीय स्थिति में सुधार के लिए भी विद्रोह किये। इन किसानों की दयनीय स्थिति से प्रभावित होकर कुछ मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों ने 1860 ई. के पश्चात् समाजवादी विचारधारा के आधार पर एक आन्दोलन आरम्भ किया। हर्जेन और चर्नीशेवेस्की इस आन्दोलन के मुख्य प्रणेता थे। उनके समर्थकों को 'नरोदनिक' या पापुलिस्ट कहा जाता था। वे चाहते थे कि रूस के कृषकों को भूमि का स्वामी माना जाए और ग्राम–सभाओं के माध्यम से भूमि का वितरण किया जाए। कुछ समय बाद समाजवादी दल दो भागों में विभाजित हो गया–पहला, क्रांतिकारी समाजवादी दल और दूसरा, सोश्यल डेमोक्रेटिक दल। क्रांतिकारी समाजवादी दल कृषकों को संगठित कर देश में क्रांति लाना चाहता था। इस दल ने आतंकवादी कार्यक्रम बनाये और कई हत्याएँ भी की। किन्तु सोश्यल डेमोक्रेटिक दल, जिसकी स्थापना 1898 ई. में हुई थी, सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति का मुख्य आधार मानता था, कृषकों को नहीं। सोश्यल डेमोक्रेंटिक दल भी 1903ई. में दो दलों में विभक्त हो गया बोल्शेविक और मेनशेविक। जारशाही ने समाजवादी विचारों पर रोक लगाने का प्रयत्न किया किन्तु उसे पर्याप्त सफलता नहीं मिलीं।

9. जार निकोलस द्वितीय का व्यक्तित्व एवं भ्रष्ट शासनः– फिशर के अनुसार ''रूस का जार निकोलस द्वितीय बड़ा अन्धविश्वासी और अयोग्य था। वह दुर्बल और हठी स्वभाव का मन्दबुद्धि था, जिसमें घटनाओं के महत्त्व और व्यक्तियों के चरित्र को समझने की शक्ति नहीं थी। उस पर महारानी अलैक्जैण्ड्रा का विशेष प्रभाव था। वह स्वेच्छाचारी शासन की पक्षपाती थी। जारीना रासपुटिन नामक साधु के हाथ की कठपुतली बनी हुई थी। रासपुटिन ने अपने व्यापक प्रभाव का लाभ उठाकर प्रशासन में हस्तक्षेप शुरू कर दिया। उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति एवं पदच्युति रासपुटिन के हाथ में आश्रित हो गई। फलस्वरूप राजदरबार में रासपुटिन के विरोध में एक दल बन गया, जिसने दिसम्बर, 1916 ई. में उसकी हत्या कर दी।

10. तत्कालिक कारण–प्रथम विश्व युद्ध में रूस का प्रवेश एवं आर्थिक संकटः–अगस्त, 1914 ई. में रूस ने प्रथम विश्वयुद्ध में मित्र राष्ट्रों की ओर से भाग लिया था। उस समय बोल्शेविक दल के पाँच सदस्यों को छोड़कर संसद के सभी सदस्यों ने शासन के इस निर्णय का स्वागत किया था। यदि जार निकोलस योग्य होता और प्रशासन ईमानदार होता, तो ऐसी परिस्थिति में जनमत को राजभक्त बनाया जा सकता था परन्तु इस समय भी रूस–जापान युद्ध के समय के इतिहास की पुनरावृत्ति हुई। युद्ध के प्रारम्भिक काल में रूस की सेनाओं को कुछ सफलता अवश्य मिली परन्तु कुछ ही समय बाद जर्मनी के विरूद्ध रूस की सेनाएँ पराजित होने लगीं। सेनाओं को पर्याप्त मात्रा में अस्त्र–शस्त्र एवं खाद्य सामग्री नहीं मिल पा रही थी। यातायात व्यवस्था का पूर्ण विकास न होने के कारण समय पर रसद पहुँचाने में कठिनाई होती थी। सेना के अधिकारियों की आयोग्यता, प्रशासन के विभिन्न विभागों में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा साम्राज्ञी एवं प्रमुख सामन्तों का युद्ध कार्य में हस्तक्षेप आदि के कारण रूस की सेनाओं की लगातार पराजय हुई। यद्ध के प्रथम तीन वर्षों में एक करोड़ 50 लाख सैनिक युद्ध क्षेत्र में भेजे गये, जिससे खेतों में काम करने वालों की कमी हो गई और कृषि उत्पादन में गिरावट आयी। खाद्य सामग्री के साथ–साथ अन्य वस्तुओं की भी कमी होने लगी। ऐसी स्थिति में जनसाधारण का असंतोष बढ़ना स्वाभाविक ही था। 1916–17 ई. के शीतकाल में रूस में घोर असंतोष व्याप्त था। उधर तो सेनाओं की निरंतर हार के अपमान से जनता क्षुब्ध थी, इधर अनाज, ईंधन, कपड़े आदि की कमी होने लगी और देश में दुर्भिक्ष की आशंका उत्पन्न होने लगी। इस अवस्था के लिए जनता जार की अव्यवस्था और कुप्रबन्ध को ही उत्तरदायी समझती थी।

फरवरी 1917 ई. की क्रांति और जारशाही का अन्तः–रूस में अव्यवस्था और कुप्रबन्ध की इस दशा को सुधारने के लिए विशेषज्ञों की एक कमेटी सरकार द्वारा नियुक्त की गई थी। इस कमेटी के विचार थे कि देश में अनाज और कपड़ा प्रचुर मात्रा में विद्यमान है, पर सरकारी अव्यवस्था और कुप्रबन्ध के कारण वह चोर–बाजार में चला गया है। फरवरी, 1917 ई. में मास्को में कुलीन वर्गों का एक सम्मेलन हुआ, इस वर्ग ने भी यह मांग की

कि स्थिति को सम्भालने के लिए शासन में सुधार होना आवश्यक है तथा पार्लियामेन्ट का अधिवेशन शीघ्र बुलाना चाहिये। किन्तु सम्राट और उसके सहायकों ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

पेट्रोग्राड की मजदूर हड़ताल

अन्त में, मार्च, 1917 ई. को स्थिति अनियंत्रित हो गई। भूख और ठण्ड से ठिठुरते हुए गरीब मजदूरों ने पेट्रोग्राड की सड़कों पर दुकानों को लूटना आरम्भ कर दिया। सम्राट ने इन पर गोलियाँ चला कर हटाने का आदेश दिया किन्तु सिपाहियों ने गोलियाँ चलाने से इन्कार कर दिया। यही क्रांति का आरम्भ था। 8 मार्च, 1917 ई. को पेट्रोग्राड के कपड़े के कारखाने में काम करने वाली स्त्रियों ने हड़ताल कर दी क्योंकि उन्हें भर पेट भोजन नहीं मिल रहा था। अगले दिन पुरूष मजदूर भी उनके साथ सम्मिलित हो गये। हड़ताली लोगों ने एक जुलूस निकाला, जो शहर के मध्य भाग में प्रविष्ट हो गया। वे लोग 'रोटी दो' के साथ–साथ 'अत्याचारी शासन का नाश हो', के भी नारे लगा रहे थे। 10 मार्च को पेट्रोग्राड के सभी कारखानों में काम बन्द रहा और शहर के बाहरी भाग में मजदूरों ने पुलिस से हथियार छीन लिये। जार ने उपद्रवकारियों का दमन करने के लिए सेना भेजी किन्तु सैनिकों ने भी आन्दोलकारियों का साथ दिया। इसके दूसरे दिन सम्राट ने 'ड्यूमा' को भंग कर दिया, फिर भी तीन दिन तक यह संघर्ष चलता रहा। 12 मार्च के दिन सैनिक टुकड़ियाँ अधिकारियों के आदेश का उल्लंघन कर विद्रोहियों से मिल गयीं।

क्रांतिकारी सोवियत (परिषद) का गठन

1905–1907 ई. की क्रान्तियों के अपने अनुभव को ध्यान में रखकर क्रान्तिकारी सत्ता के नये निकाय–मजदूरों और सैनिकों ने मिलकर ''सैनिकों एवं मजदूरों के प्रतिनिधियों की 'क्रान्तिकारी' सोवियत'(परिषद) बना ली। शासन के वास्तविक अधिकार इस परिषद ने अपने हाथ में ले लिये। 14 मार्च को क्रान्तिकारी परिषद और ड्यूमा के सदस्यों की एक समिति ने मिलकर एक 'अस्थायी सरकार' गठित की, जिसका नेता प्रिंस ल्वोव को बनाया गया। इस 'अस्थायी सरकार' में क्रांतिकारी समाजवादी दल के नेता अेक्जण्डर करेन्स्की, अक्टूबरिस्ट दल के नेता गुशकाव तथा कान्स्टीट्युशनल डेमोक्रेटिक दल के नेता मिल्यूकाव को भी सम्मिलित किया गया। स्थिति को बिगड़ते देख 15 मार्च, 1917 ई. को जार निकोलस द्वितीय ने अपने भाई ग्रेण्ड ड्यूक माइकेल के पक्ष में सिंहासन का परित्याग कर दिया। तीन सौ साल से जो रोमानोव राजवंश शासन कर रहा था, उसका अब अन्त हो गया। रूस में राज्य क्रांति सफल हो गई। रूस की इस क्रांति में पेट्रोग्राड का वही स्थान था, जो फ्रांस की राज्य–क्रांति में पेरिस का था।

अस्थायी उदारवादी सरकार का मंत्रिमण्डलः– रूस की अस्थायी सरकार में क्रांतिकारी समाजवादी दल के नेता अलेक्जेण्डर केरेन्स्की को न्यायमंत्री, अक्टूबरिस्ट दल के नेता गुशकाव को युद्धमंत्री, कान्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेटिक दल के नेता प्रोफेसर मिल्यूकाव को विदेशमंत्री और टेरेवेन्को को अर्थमंत्री बनाया गया। यद्यपि क्रांति का मुख्य श्रेय भूखे और नंगे मजदूरों को था, पर सम्राट को राज्यच्युत करके जो नई सरकार स्थापित हुई, उसका नेतृत्व कुलीन और मध्यम वर्ग के हाथों में पहुँच गया था। लिप्सन ने भी इस सम्बन्ध में लिखा है कि ''जार से शासन सत्ता मजदूरों ने छीनी थी, पर उन्होंने तुरन्त उसे मध्यम वर्ग को सौंप दी।''

बोल्शेविक विचारधारा के विकास में लेनिन का योगदानः–

समाजवाद को धरती पर स्थापित करने वाले, युगों के स्वप्न को साकार रूप देने वाला वास्तविक तत्वदर्शी कार्ल मार्क्स था। लेकिन, विश्व में प्रथम साम्यवादी सरकार की स्थापना करने एवं शासन के मार्क्सवादी माडल को ग्रंथों से उतारकार धरती पर लाने का श्रेय लेनिन को है। बाल्शेविक क्रांति के महानायक का जन्म रूस की वोल्गा नदी के समीप सिम्बिर्स्क नगर मे 22 अप्रैल 1870 ई. को हुआ था। इनके पिता का नाम इलिया उलियानोफ और मां का नाम अलेक्सान्द्रोला ब्लांक था। लेनिन का प्रारंभिक नाम व्लादिमिर इलिच उलियानोफ रखा गया था। वह बड़े भाई अलेक्सान्द्र से सबसे अधिक प्रभावित था। लेनिन को बचपन से इतिहास और साहित्य में बहुत रूचि थी। उसके सभी भाई–बहिनों ने क्रांतिकारी बनकर अपना जीवन देश और सर्वहारा वर्ग की मुक्ति के प्रयत्न में लगाया। इस समय रूसी क्रांतिकारियों के ही नही, रूसी कामगारों, किसानों तथा पराजित जातियों के ऊपर भी आये दिन अत्याचार होते रहते थे। रूस में होने वाली इन

घटनाओं को लेनिन ने बड़े मनोयोग से देखा। उसके जीवन पर चेर्नीशेब्स्की के उपन्यास 'क्या करना है' का काफी प्रभाव पड़ा। अपने बड़े भाई के कारण लेनिन में आत्मानुशासन, विचार शीलता, गंभीर मनोवृत्ति तथा कर्त्तव्य परायणता कूट–कूट कर भरी हुई थी। इन्होंने ने ही पहली बार 1885–86 में मार्क्स की प्रसिद्ध रचना 'दास केपिटल' लेनिन को पढ़ने हेतु दी थी। इसी समय से क्रांति के अंकुर लेनिन के मस्तिष्क में उपजने लगे।

सोश्यल डेमोक्रेटिक पार्टी का दो गुटों बोल्शेविक एवं मेन्शेविक में विभाजन

8 मई, 1887 ई. को जार अलेक्जेण्डर तृतीय की हत्या के जुर्म में लेनिन के भाई अलेक्सान्द्र उलियानोफ को फांसी के तख्ते पर लटका दिया गया। इस घटना के बाद लेनिन ने जारशाही ही नही बल्कि उसकी जड़ को उखाड़ फेंकने का संकल्प कर लिया था। अपने इस संकल्प में लेनिन अन्ततः सफल रहे। लेकिन उनका मानना था कि स्वेच्छाचारिता से लड़ने के लिये आतंकवाद का रास्ता गलत है। वह प्रचार, संगठन और नेतृत्व के बचाव की आवश्यकता से भलीभाँति परिचित था। पत्र–पत्रिकाओं द्वारा विचारों के प्रचार–प्रसार के साथ–साथ संगठन पर भी उसने पूरा ध्यान दिया। 'सोश्यल डेमोक्रेटिक पार्टी' की स्थापना उसके निर्वासन काल में 1898 ई. में ही हो चुकी थी, उसका प्रथम अधिवेशन भी उसकी अनुपस्थिति में हो चुका था। परन्तु इस दल की 'दूसरी पार्टी कांग्रेस'लेनिन के लिए अधिक महत्वपूर्ण थी। यह लंदन में 17 जुलाई, 1903 ई. को शुरू हुई। यहीं सोश्यल डेमोक्रेटिक दल का विभाजन हुआ। कांग्रेस के बहुमत ने लेनिन के क्रान्तिकारी कार्यक्रम का समर्थन किया। बहुमत को रूसी भाषा में ''बोलशिन्स्त्वो'' कहते हैं, इसी से 'बोल्शेविक' शब्द प्रचलित हुआ। लेनिन विरोधी धड़ा अल्पमत में था, रूसी भाषा में अल्पमत को 'मेन्शिन्स्त्वों' कहते हैं, इसी से 'मेन्शिविक' शब्द विकसित हुआ। बोल्शेविकों ने स्वयं को क्रान्तिकारी और मेन्शेविकों को सुधारवादी एवं अवसरवादी माना। अल्पमत और बहुमत का यह दावा लेनिन समर्थकों का था। कांग्रेस में तो प्रतिनिध सीमित थे, रूस से दूर लंदन में बैठकर बहुमत का अंकन कर लिया जाए तो अलग बात है, रूस में तो 1917 ई. के प्रारम्भ तक वस्तुतः मेन्शेविकों का प्रभाव अधिक था।

युद्धकाल में लेनिन को आस्ट्रिया और जर्मनी का सहयोग

लेनिन ने उदार लोकतांत्रिक देशों की राजनीतिक स्वतन्त्रता का उपभोग किया परन्तु स्वयं ने असहमति या विरोध को सहन नहीं किया–यह एक विरोधाभास लगता है। अपने से असहमत पार्टीजन या विचारक को प्रायः संशोधनवादी या अवसरवादी बताना राजनीतिक फैशन है। लेनिन ने पार्टी के संगठनात्मक ढांचे, उसके अधिवेशनों, कार्यक्रमों आदि के द्वारा निरन्तर पार्टी पर अपनी पकड़ मजबूत बनाई, विरोधियों का सफाया किया।

लेनिन अपने अग्रज की तरह भावुक क्रान्तिकारी नहीं था, जो दो–चार की हत्या कर स्वयं भी सत्ता के हत्थे चढ़ जाए। उसने संकट की घड़ी में बिना हिचक पलायन किया और मौका आने पर ही लौटा। आश्चर्य का विषय है कि 1905, फरवरी (मार्च) 1917 और अक्टूबर (नवम्बर), 1917 ई. में जब रूस में क्रांतियाँ उफन रही थीं, लेनिन विदेशों में था।

25 अक्टूबर (7 नवम्बर), 1917 ई. को बोल्शेविक क्रान्ति सफल होने पर ही वह फिनलैण्ड से लौटकर रूस पहुँचा। 1900–17 ई. के बीच उसका अधिकांश समय विदेशों में ही व्यतीत हुआ। युद्धकाल में आस्ट्रिया और जर्मनी का उसे संभवतः सहयोग मिला था। क्योंकि एक रूसी होते हुए भी वह रूस के प्रथम विश्व युद्ध में सम्मिलित होने का विरोधी था, यह उन देशों के अनुकूल था। इसिलिए ऑस्ट्रिया ने उसे रूसी जासूस के चक्कर में 8 अगस्त, 1914 को बन्दी बनाया, और 19 अगस्त,1914 ई. में उसे छोड़ भी दिया। वह रूस की जारशाही का विरोध करते हुए 1912–14 ई. के बीच आस्ट्रियन सीमा में बिना किसी बाधा के रहता रहा। जर्मनी ने उसे अप्रैल, 1917 को अपनी सीमाओं से होते हुए युद्ध काल में रूस पहुँचाया। मार्च, 1918 में लेनिन की सरकार ने जर्मनी के साथ ब्रेस्ट–लिटोवस्क की अपमानजनक सन्धि की। इससे बोल्शेविकों के प्रति युद्धकाल में जर्मनी की उदारता का कारण समझ में आ सकता है। अपने विदेश प्रवास द्वारा यूरोपीय देशों में बोल्शेविकों का एक नेटवर्क विकसित हुआ, प्रचार तन्त्र विकसित हुआ, लेनिन रूस में सम्भावित दमन से भी बच सका और दूर होने से पार्टी की राजनीति पर अधिक प्रभावी नियन्त्रण रख सका।

'बोल्शेविक पार्टी' का नाम बाद में लेनिन ने 'कम्युनिस्ट पार्टी' रखा। लेनिन के सुयोग्य नेतृत्व और मजबूत संगठन के बल पर बोल्शेविक 25 अक्टूबर (7 नवम्बर), 1917 को सत्ता हस्तगत करने में सफल हुए।

अक्टूबर (नवम्बर), 1917 ई. की बोल्शेविक क्रान्ति

वर्णित क्रान्तियों के क्रम में इसका स्थान तीसरा था। स्थायित्व एवं प्रभाव की दृष्टि से यह चरण अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। 1898 ई. में सोश्यल डेमोक्रेटिक पार्टी, तत्पश्चात् 1903 ई. में में इसके गुट बोल्शेविक दल का उदय, उसके विकास एवं नेता लेनिन की गतिविधियों का लेखाजोखा पूर्व शीर्षक में अंकित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि रूस की सत्ता हस्तगत करने हेतु बोल्शेविक संगठन एवं प्रचार के स्तर पर 1917 की प्रथम क्रान्ति के बाद बहुत सक्रिय हो गए। वे सरकार का तख्ता पलटने हेतु एक अवसर की तलाश में थे। बोल्शेविकों ने सरकार के विरूद्ध प्रचार करते हुए सर्वहारा के मन में उसके प्रति आक्रोश का भाव भरा। केरेन्सकी सरकार बहुत दुर्बल थी, सभी प्रमुख दल सरकार से पृथक हो गए थे। फिनलैण्ड में निर्वासित जीवन बिता रहे लेनिन ने समय का मूल्य आंकते हुए 12–13 सितम्बर को वहाँ से रूस में बोल्शेविक कार्यकारिणी को गुप्त पत्र लिखकर कहा कि अब सशस्त्र क्रान्ति द्वारा सत्ता हस्तगत करने का समय आ गया है।

क्रान्ति के लिए पोलित ब्यूरो एवं सैनिक क्रान्तिकारी समिति की नियुक्ति

बोल्शेविक दल की कार्यकारिणी ने 10 अक्टूबर (23 अक्टूबर), 1917 ई. को लेनिन के निर्देशानुसार सशस्त्र क्रान्ति द्वारा सत्ता हस्तगत करने का निर्णय किया और योजना कार्यान्वित करने के लिए एक 'पोलितब्यूरो' की नियुक्ति की। ट्राटस्की, जो पेट्रोग्राद सोवियत का प्रधान बन गया था, ने सोवियत की 'सैनिक क्रान्तिकारी समिति' नियुक्त कर दी। बोल्शेविक नेताओं ने निश्चय किया कि 25 अक्टूबर (7 नवम्बर) को होने वाले 'अखिल रूसी सोवियत सम्मेलन' से पहले क्रान्ति की योजना कार्यान्वित कर दी जाए। केरेन्सकी सरकार की स्थिति डाँवाडोल थी। सरकार को बोल्शेविक गतिविधियों की भनक पड़ी तो उसने 23 अक्टूबर (5 नवम्बर) को बोल्शेविक नेताओं को बन्दी बनाने की आज्ञा निकाली। परन्तु इस समय तक क्रान्ति की तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी थीं। सैनिक क्रान्तिकारी समिति के सदस्य ट्राटस्की, पोदवाइस्की और लाशेविच सशस्त्र आक्रमण की तैयारियाँ कर चुके थे।

24–25 अक्टूबर (6–7 नवम्बर) की संधि–बेला में बोल्शेविकों के लाल रक्षकों और नियमित सैनिकों की टुकड़ियों ने योजनानुसार पेट्रोग्राद में बिना किसी प्रतिरोध के टेलीफोन केन्द्र, डाक–घर, बिजली–घर, रेल्वे स्टेशन, राष्ट्रीय बैंक आदि प्रमुख स्थानों पर कब्जा कर लिया–रात्रि में वहाँ प्रतिरोध करने को था ही कौन, फिर एक दुर्बल सरकार प्रतिरोध भी क्या करती? 25 अक्टूबर (7 नवम्बर), 1917 ई. को प्रातःकाल बोल्शेविकों के नेतृत्व में कामगारों और सैनिकों ने पेट्रोग्राद में रूस के पूर्व जार के शीतप्रसाद पर अधिकार कर लिया, सरकार के मंत्रियों को बंदी बना लिया गया। केरेन्सकी राजधानी छोड़कर भाग गया। राजधानी पेट्रोग्राद (पूर्व में सेण्ट पीटर्सवर्ग, बाद में लेनिनग्राद) में सभी प्रमुख स्थानों पर इश्तहार चिपकाए गए, जिसमें घोषित किया गया–''अस्थायी सरकार को समाप्त कर दिया गया है और उसके स्थान पर सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी समिति तथा पेट्रोग्राद के गेरीसन ने सत्ता ग्रहण कर ली है।''

इस प्रकार बिना रक्तपात के, कुछ घण्टों में ही सत्ता सूत्र बोल्शेविक दल को हस्तान्तरित हो गए, राजधानी पर उनका आधिपत्य हो गया। क्रान्ति के विषय में ट्राटस्की ने पेट्रोग्राद सोवियत को अपने प्रतिवेदन में कहा–'लोग कहते थे कि जब बलवा होगा तो क्रान्ति रक्त की नदियों से डूब जाएगी, परन्तु हमने एक भी व्यक्ति की मृत्यु की खबर नहीं सुनी। इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है कि किसी क्रान्ति में इतने लोग सम्मिलित हों और वह रक्तहीन हो।' ट्राटस्की की गर्वोक्ति दम्भपूर्ण लगती है। क्योंकि रूस की ही पिछली क्रान्ति जो सप्ताह भर से ज्यादा चली थी (नए मार्च, 1917 में) उसमें भी कोई रक्तपात नहीं हुआ जबकि सामने निरंकुश जारशाही थी। दूसरे, बोल्शेविक क्रान्ति अचानक रात को प्रारम्भ हुई और प्रातः काल तक पूर्ण हो गई, दूसरा पक्ष मैदान में ही नहीं था तो रक्तपात की जरूरत ही नहीं पड़ी। परन्तु रक्तपात तो क्रान्ति के बाद हुआ। ए. राथेन्सटीन (ए हिस्ट्री ऑव दि यू.एस.एस.आर.) के

अनुसार 'तीन वर्ष के संघर्ष में 13.50 लाख लोग मारे गए या घायल हुए।' स्वयं ट्राटस्की को भी स्वीकार करना पड़ा कि जनता को लाल आतंक का त्रास सहना पड़ा। साधारण जनता को क्रान्तिकारियों के 'लाल आतंक' और प्रतिक्रान्तिकारियों के 'श्वेत आतंक' का शिकार होना पड़ा। ऐसा आमूलचूल परिवर्तन होगा तो उसके परिणामस्परूप हिंसा–प्रतिहिंसा का दौरा आएगा ही।

बोल्शेविक सरकार का गठनः–

7 नवम्बर, 1917 ई. (आगे सभी तिथियाँ नए कैलेण्डरानुसार) को बोल्शेविकों ने सत्ता पर कब्जा कर लिया। उसी दिन उनका नेता लेनिन भी फिनलैण्ड से रूस लौट आया। सांयकाल पूर्व निर्धारित 'अखिल रूसी सोवियत सम्मेलन' का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। उसके 649 प्रतिनिधियों में से 390 बोल्शेविक थे, अब उनका प्राधान्य था। लेनिन ने युद्धबन्दी और भूमिपतियों से भूमि छीनने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। सम्मेलन ने इसे स्वीकार किया तथा अस्थायी सरकार को हटाकर नई सरकार बनाने का स्वागत किया। 8 नवम्बर, 1917 ई. को लेनिन की अध्यक्षता में नई सरकार का प्रथम मंत्रिमण्डल (काउन्सिल ऑफ पीपुल्स काम्मिसार) गठित किया गया। नई सरकार में ट्राटस्की को विदेशमंत्री, स्टालिन को राष्ट्रिक–जातियों का मंत्री राइकाव को गृहमन्त्री बनाया गया। नवीन सरकार ने युद्ध बन्द कर केन्द्रीय शक्तियों से सन्धि करना, राज्य में व्यापक राजनैतिक, सामयिक एवं आर्थिक परिवर्तन करना तथा सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति का विश्व में प्रसार करने का निर्णय लिया।

गृह कलह और विदेशी राज्यों का हस्तक्षेपः–

बोल्शेविक दल को अपने शासन के प्रारम्भिक तीन वर्षों (1917–20 ई.) में गृह–कलह का सामना करना पड़ा। बोल्शेविक सरकार से अन्य राजनीतिक दलों का विरोध तो था ही, साथ ही जिन लोगों की भूमि छिन गई थी वे और सैन्य अधिकारी भी उससे असंतुष्ट थे। इन क्रान्ति विरोधियों के विरूद्ध सरकार को कठिन संघर्ष करना पड़ा। मित्र राज्यों ने बोल्शेविक सरकार द्वारा जर्मनी से संधि कर लेने के पश्चात् रूस के प्रतिक्रान्तिकारियों का खुला समर्थन कर लेनिन सरकार का संकट और बढ़ा दिया। मित्र राज्यों की सेनाओं ने रूस के विभिन्न क्षेत्रों में बोल्शेविक विरोधियों के सहयोग से 'श्वेत सरकारें' स्थापित कीं। ये सरकारें विभिन्न सैन्य अधिकारियों के नेतृत्व में स्थापित हुई। कुछ समय तक तो बोल्शेविक सरकार का अधिकार पेट्रोग्राद और मास्को के आस–पास तक ही सिमट गया। परन्तु अन्त में लेनिन की विजय हुई।

लाल सेना और चेका का आतंकराजः–

बोल्शेविकों ने विदेशी सेनाओं और जार के पूर्व सेनापतियों का सामना करने हेतु शक्तिशाली 'लाल सेना' का गठन किया। प्रतिक्रान्तिकारियों की सेना को 'श्वेत सेना' कहा गया। जनता को लाल और श्वेत दोनों प्रकार के आतंक का कोपभाजन बनना पड़ा। संघर्ष के दौरान बोल्शेविकों ने जार और जारीना की जुलाई, 1918 में हत्या कर दी। जार और उसका परिवार पेट्रोग्राद के राजमहल में बंदी जीवन व्यतीत कर रहा था। बोल्शेविक सरकार ने उन्हें वहाँ से हटाकर यूराल प्रदेश के 'इकेटेरिनबर्ग' नामक स्थान पर भेज दिया। वहीं जार और उसकी पत्नी की गोली मारकर नृशंसतापूर्वक हत्या कर दी गई। बोल्शेविकों ने प्रतिक्रान्तिकारियों के दमनार्थ एक गुप्त, क्रान्तिकारी न्यायालय 'चेका' का संक्षिप्त रूप की स्थापना की। चेका ने हजारों प्रतिक्रान्तिकारियों को पकड़ कर गोली से उड़ा दिया और आतंकराज स्थापित किया। इसका अध्यक्ष फेलिक्स केरजिंस्की आतंकवादी नीति को आवश्यक मानता था। चेका ने प्रतिक्रान्तिकारियों का निर्ममतापूर्वक दमन किया। 'लाल सेना' ट्राटस्की के नेतृत्व में बहुत शक्तिशाली हो गई तो मित्र राज्यों को भी अपनी सक्रिय हस्तक्षेप की नीति बदलती पड़ी। फिर एक–एक कर विद्रोही सेनापतियों को लाल सेना ने परास्त कर दिया, वे आपस में संगठित नहीं हो पाए।

इस प्रकार चेका, लाल सेना आदि की मदद से प्रतिक्रान्तिकारियों और मित्र राज्यों के सैनिक हस्तक्षेप से उत्पन्न संकट पर काबू पा लिया गया। एक तो विदेशी हस्तक्षेप से रूसी देशभक्तों की राष्ट्रभक्ति जागृत हुई, उसका लाभ बोल्शेविकों को मिला। दूसरे, जिन कृषकों को नई सरकार ने भूमि वितरित की, उन्होंने भी बोल्शेविकों का साथ दिया। इन तीन वर्षों में रूस की आर्थिक स्थिति अत्यन्त निराशाजनक हो गई, कृषि और औद्योगिक उत्पादन आधा रह गया (1913 की तुलना में) और ईंधन, मिट्टी का तेल, बिजली, कपड़े इत्यादि वस्तुओं का अभाव हो गया। संघर्ष में 13.50 लाख लोग मारे

गए। 'न्यू केम्ब्रिज मॉडर्न हिस्ट्री–खण्ड–12' के अनुसार जिनोवीव, जो 1917 की क्रान्ति का एक नेता था, ने अक्टूबर, 1920 में जर्मन समाजवादियों के समक्ष बोलते हुए यह स्वीकार किया था–''हमने कभी यह कल्पना नहीं की थी कि गृह कलह के काल में हमें इस प्रकार की आतंकवादी नीति अपनानी पड़ेगी और हमारे हाथ खून में रंग जायेंगे।''

बोल्शेविक क्रान्ति के परिणाम

1917 ई. की बोल्शेविक क्रान्ति के अनेक दूरगामी परिणाम हुए। इसके परिणामों को बिन्दुओं के रूप में निम्नानुसार दर्शाया जा सकता है–

(अ) राजनीतिक परिणाम

1. केरेन्सकी सरकार का पतन : बोल्शेविकों ने 6–7 नवम्बर, 1917 ई. को केरेन्सकी सरकार का तख्ता, बिना एक बूंद रक्त बहाए, पलट दिया। केरेन्सकी क्रान्तिकारी समाजवादी दल का नेता था, उसकी सरकार में अन्य दल भी सम्मिलित थे। अपने अन्तिम समय में यह साझा सरकार एकदम दुर्बल एवं एकाकी हो गई थी। बोल्शेविकों को रोमानोव राजवंश के पतन के लिए उत्तरदायी ठहराना उपयुक्त नहीं है, क्योंकि उसे तो 1917 की प्रथम क्रान्ति ही समाप्त कर चुकी थी।

2. प्रथम साम्यवादी सरकार की स्थापना : साम्यवादी सरकार की स्थापना का यह विश्व में पहला प्रयोग था। मार्क्स का विचार कभी कार्यरूप ले सकेगा, यह रूस में बोल्शेविकों ने सम्भव कर दिखाया। सिद्धान्त और व्यवहार में कभी–कभी बहुत फासला होता है। बोल्शेविक प्रयोग ने मार्क्सवादी विचारकों को अपने दर्शन के परीक्षण हेतु एक प्रयोगशाला उपलब्ध करवायी।

3.रूस का युद्ध से प्रथक होना : बोल्शेविक प्रारम्भ से ही प्रथम विश्व युद्ध में रूस के भाग लेने के विरोधी थे। उन्होंने इसे दो साम्राज्यवादी खेमों का आपसी संघर्ष बताया था। अस्थायी गल्वोव और केरेन्सकी सरकारों से भी उन्होंने युद्ध से अलग होने की मांग की थी। वे 'शान्ति, रोटी और भूमि' के नारों से जन–मानस को प्रभावित करते रहे। युद्ध में जर्मनी के हाथों रूस की निरन्तर पराजय से जनता भी युद्ध के विरूद्ध हो गई थी। नई सरकार ने अपनी नीति के अनुसार बिना मित्र राज्यों से परामर्श किए जर्मनी से मार्च, 1918 में 'ब्रेस्ट लिटोवस्क सन्धि' करके रूस को प्रथम विश्वयुद्ध से पृथक कर दिया।

4. मित्र राष्ट्रों का असंतोष और गृह–युद्ध में हस्तक्षेप : रूस ने अपने मित्रों (मित्र राष्ट्र = सहबद्ध एवं सहचर शक्तियाँ) से परामर्श किए बिना ही जर्मनी के साथ सन्धि कर ली तो मित्र राष्ट्र असंतुष्ट हो गए। अब जर्मनी पूर्वी मोर्चे से निश्चित होकर पश्चिमी मोर्चे पर पश्चिमी राज्यों के लिए अधिक कठिनाई उपस्थित कर सकता था। मित्र राज्य ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस आदि उससे नाराज हो गए। उन्होंने बोल्शेविक सरकार के विरूद्ध रूस से उभरे असंतोष को सैनिक सहायता उपलब्ध कराकर, वहाँ गृह–युद्ध की स्थितियाँ पैदा कर दी। नई सरकार को प्रारम्भिक तीन वर्षों तक गृह–युद्ध में उलझे रहना पड़ा, एक समय तो उसका अधिकार राजधानी और उसके आस–पास के प्रदेशों तक ही सीमित रह गया। अधिकांश प्रान्तों पर अलग–अलग सेनापतियों ने अपनी सरकारें स्थापित कर लीं। 1920 ई. में पश्चिमी शक्तियों ने अपना हस्तक्षेप समाप्त किया।

5. साम्यवादी व्यवस्था एवं विचारधारा का प्रसार : चूंकि साम्यवाद राष्ट्र, राज्य या देश की परिधि को स्वीकार नहीं करता, बोल्शेविक क्रान्ति को भी उन्होंने रूस की चार–दीवारी में कैद रखना उपयुक्त नहीं समझा। साम्यवादी विचारधारा को विश्व भर में प्रसारित करने हेतु ही मार्च, 1919 में मास्को में तृतीय (प्रथम कम्युनिस्ट) इण्टरनेशनल या 'कोमिन्टर्न' की स्थापना की गई। जी.एम. गेथोर्न हार्डी (अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का संक्षिप्त इतिहास : 1920–39) के अनुसार, 'वस्तुतः सोवियत नीति के पहले नेता अपने आपको विश्वव्यापी आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति के मिशनरी या प्रचारक समझते थे और उनके लिए रूस सिर्फ एक ऐसा उपकरण था, जिसके द्वारा उनके अन्तिम लक्ष्य की सिद्धि हो सकती थी। राष्ट्रवाद उनके विचारों से असंगत था।

6. नागरिक स्वतन्त्रताओं का हनन : बोल्शेविक क्रान्ति के फलस्वरूप रूस आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता की दिशा में तो आगे बढ़ा परन्तु राजनीतिक स्वतंत्रता का हनन हुआ। रूस में कम्युनिस्ट पार्टी एकमात्र वैधानिक दल घोषित कर दिया गया, उसमें भी असहमत, असंतुष्ट लोगों का दमन

कर दिया जाता था। भाषण, लेखन, संगठन और आस्था की जिस स्वतन्त्रता का बोल्शेविकों ने जारशाही के युग में भी किसी न किसी रूप में उपभोग किया था, अपने शासन में उन्होंने उसका पूर्णतः उन्मूलन कर दिया। असहमत या असंतुष्ट का स्थान साइबेरिया या परलोक में हो सकता था या बन्दीगृह में।

7. गृह–युद्ध और आतंक : बोल्शेविकों के सत्ता में आने के बाद रूस को गृह–युद्ध में उलझना पड़ा। प्रतिपक्षी राजनीतिक दल, सामंतों–कुलीनों और मित्र राज्यों की सेनाओं से रूस की नई सरकार को संघर्ष करना पड़ा। दोनों पक्षों की ओर से नृशंसता, आतंक और निर्दयता का परिचय दिया गया। बोल्शेविकों ने 'लाल आतंक' और विरोधी सेनापतियों ने 'श्वेत आतंक' द्वारा रूसवासियों को आक्रान्त किया। बोल्शेविकों की अंतिम विजय (1920 ई.) के बाद इन्होंने आतंक और भय के आधार पर अपनी सत्ता बनाए रखने का प्रयत्न किया। दल या उसके नेता की नतियों से असहमत व्यक्ति या संस्था को 'प्रतिक्रियावादी' घोषित करना, संस्था को भंग करना, व्यक्ति को बन्दी गृह, साइबेरिया या यमलोक पहुँचाना बोल्शेविक नीति का अंग रहा है। दल में अपने प्रतिस्पर्धियों के साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया जाता था, ट्राटस्की के साथ नेतृत्व की होड़ में स्टालिन द्वारा किया गया व्यवहार इसका पुख्ता प्रमाण है।

8. रूस का विश्व शक्ति के रूप में उदय : बोल्शेविक सरकार ने मार्च, 1918 ई. में जर्मनी के निर्देशानुसार ब्रेस्ट–लिटोवस्क सन्धि पर हस्ताक्षर किए तो रूस एक शिथिल, विश्रृंखल और निर्बल राज्य प्रतीत हो रहा था। परन्तु क्रान्ति के परिणामस्वरूप आगामी 5–7 वर्षों में ही रूस एक महाशक्ति के रूप में उभर आया। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति से 1991 ई. में सोवियत संघ के विघटन तक रूस यानी सोवियत संघ विश्व की प्रमुख दो महाशक्तियों में से एक था।

9. पराधीन राष्ट्रों में नवचेतना का संचरण : रूसी सरकार ने विश्व में सर्वत्र दबे–कुचले लोगों को समर्थन दिया। एशिया और अफ्रीका के पराधीन राज्यों ने रूस की क्रान्ति से प्रेरणा ग्रहण की। प्रत्येक क्रान्तिकारी घटना, सार्वदेशिक और सार्वकालिक प्रभाव छोड़ती है। फ्रांसीसी क्रान्ति स्वयं फ्रांस में निढ़ाल हो गई परन्तु इसने विश्व भर में पीड़ित जनमत को जगाने का कार्य किया। रूसी क्रान्ति ने भी चीन, भारत सहित अनेक देशों के लोगों में राष्ट्रवादी एवं प्रगतिशील भावनाएँ जगाकर, साम्राज्यवादी शक्तियों के विरूद्ध संघर्ष हेतु उन्हें प्रेरित किया।

10. अधिनायकवाद का उदय : बोल्शेविकक्रान्ति ने जिस सर्वहरा अधिनायकतन्त्र को स्थापित किया वह कालान्तर में सर्वाधिकारवाद या नेता का अधिनायकवाद प्रमाणित हुआ। रूसी क्रान्ति ने 20वीं सदी में एक सैद्धान्तिक सर्वसत्तावादी राज्य स्थापित किया, जबकि यूरोप राजनीतिक स्वतन्त्रताओं की दिशा में अग्रसर था। इटली और जर्मनी के सर्वसत्तावादी अधिनायकतंत्रों ने रूस से कितनी प्रेरणा ग्रहण की यह तो स्पष्ट नहीं परन्तु प्रभाव अवश्य पड़ा। पश्चिमी लोकतांत्रिक शक्तियों ने भी सोवियत संघ के बोल्शेविक प्रेत को रोकने के लिए फासिज्म, नाजीवाद जैसी अधिनायकवादी शक्तियों का तुष्टीकरण किया।

11. विश्व का दो ध्रुवों में बंटना : यद्यपि सोवियत संघ ने पहले कुछ वर्षों तक अपने समाजवाद की परवरिश में ही अधिक समय लगाया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उसने अन्य राज्यों में समाजवाद की अधिक प्रखर पैरवी की। अब विश्व पूँजीवादी और साम्यवादी दो खेमों में बँट गया। यह रूस की क्रान्ति का दूरगामी परिणाम था। बाद में साम्यवादी खेमे में दरारें आने लगी तथा तीसरा निर्गुट खेमा भी उभरा।

(ब) सामाजिक परिणाम

रूसी क्रांति सामाजिक असमानता के गर्भ से ही पैदा हुई थी। इसने सामाजिक क्षेत्र में व्यापक असर डाला।

1. वर्ग भेद का विलोपन : रूस में कुलीन और सर्वहरा वर्ग में जो भेद था, क्रांति ने उसे मिटा दिया। प्रारम्भ में तो तथाकथित कुलीनों के विशेषाधिकारों के खात्मे के साथ, उनके सामान्य अधिकारों को भी नकारा गया। बोल्शेविकों ने संगठित श्रमिकों को प्रारम्भ में एक विशिष्ट वर्ग बनाने का प्रयत्न किया। परन्तु कालान्तर में भूमि पुत्र किसानों को भी समान महत्व दिया गया। धीरे–धीरे रूसी समाज में सारे वर्ग–भेद विलुप्त होते गए। यद्यपि पार्टी अभिजत्य तो अस्तित्व में आये परन्तु जन्मगत अभिजात्य समाप्त हो गए।

2. स्त्रियों की दशा में सुधार : रूसी क्रान्ति ने लिंग आधारित परम्परागत भेदभाव को भी नष्ट कर दिया। महिलाओं को पुरूषों के समान मताधिकार, शिक्षा का अधिकार और आजीविका

कमाने का अधिकार दिया गया। महिलायें आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर, राजनीतिक दृष्टि से जागरूक और सामाजिक दृष्टि से प्रगतिशील बन गई।

3. शिक्षा का विकास एवं बोल्शेविकीकरण : रूसी क्रान्ति के परिणामस्वरूप एक सकारात्मक परिणाम यह हुआ कि शिक्षा पर से चर्च का शिकंजा हटा दिया गया। अब शिक्षा का बोल्शेविकीकरण हो गया–पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक और अध्यापन सभी स्तरों पर। यह एक नकारात्मक प्रभाव था। परन्तु शिक्षा सार्वजनिक हुई, आम जन को सुलभ हुई। साक्षरता का तो तीव्र गति से विकास हुआ।

4. नास्तिक विचारों को प्रोत्साहन : साम्यवादी धर्म को अफीम मानते थे, अतः रूसी क्रान्ति के बाद वहाँ नास्तिक विचारधारा का योजनापूर्वक विकास किया गया। 1925 ई. में एक नास्तिक संघ का गठन किया गया। साम्यवादी पार्टी के सदस्यों का धार्मिक होना निषिद्ध था। चर्च को शोषण और जारशाही का औजार मानने के कारण उसका प्रभुत्व तोड़ा गया, उस पर प्रतिबन्ध लगाया गया और उसके विरूद्ध अभियान चलाया गया। चर्च को 1918 ई. की आज्ञप्ति द्वारा राज्य से पूर्णतः पृथक कर दिया गया।

(स) आर्थिक परिणाम

1. आर्थिक समानता की स्थापना :क्रान्ति से पूर्व रूस में आर्थिक विषमता थी। 19वीं सदी के अंत तक 30 हजार बड़े जमींदारों के पास 7 करोड़ डेसयाटिन भूमि थी जबकि 1 करोड़ कृषकों के पास 7.50 करोड़ डेसयाटिन भूमि ही थी (1 डेसयाटिन = 2.7 एकड़)। समाज में अधिकार–युक्त तथा अधिकार–वंचित दो वर्ग थे। रूसी क्रान्ति के फलस्वरूप जागीरदारों से भूमि का अधिग्रहण कर सरकार ने पुनर्वितरण किया, उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया, निजी व्यापार को सीमित किया एवं उत्पादक श्रम को महत्व दिया गया। आय के विषम वितरण पर नियन्त्रण कायम हुआ और असमानता की खाई पाट दी गई।

2. रूस का औद्योगिक विकास : जार अलेक्जेण्डर तृतीय के काल में रूस का औद्योगिकीकरण प्रारम्भ हुआ था। क्रान्ति के समय रूस औद्योगिक विकास की दृष्टि से यूरोप के अन्य राज्यों से काफी पिछड़ा हुआ था। क्रान्ति के बाद रूस ने तीव्र गति से प्रगति की। बड़े–बड़े आधारभूत उद्योगों की सरकार ने स्थापना की। श्रमिकों की कार्यदशा एवं क्षमता में भी सुधार हुआ। रूस औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से आत्मनिर्भर हो गया। विडम्बना ही है कि मार्क्स के अनुसार जिस औद्योगिक विकास को वहाँ साम्यवाद का जनक बनना था वह वहाँ साम्यवाद की संतान बन गया।

3. श्रमिकों एवं कृषकों के जीवन–स्तर में सुधार : अर्द्धदासों, सीमान्त और भूमिहीन किसानों और कामगारों का युद्ध पूर्व जीवन काफी कष्टमय था। पेट्रोग्राद की सड़कों पर फरवरी (मार्च) 1917 ई. की प्रथम क्रान्ति के समय कामगारों की भीड़ रोटी की तलाश में ही उतरी थी। बोल्शेविक क्रान्ति भी 'रोटी' की मांग का परिणाम थी। क्रान्ति के प्रारम्भिक वर्षों में गृह–कलह और नीतियों की अस्पष्टता के कारण अफरा–तफरी रही। कलान्तर में इस वर्ग की आय तथा कार्यदशा में सुधार हुआ। शिक्षा, स्वास्थ्य का प्रबन्ध व्यवस्थित हुआ। जीवन–स्तर में काफी उन्नति हुई।

सोवियत संघ का परवर्ती इतिहास और स्टालिन

जनवरी, 1924 में लेनिन की मृत्यु के पश्चात् दल और सरकार का शीर्षस्थ पद प्राप्त करने हेतु लेव दव्यदोविच ब्रोंन्सटेन उर्फ लियो ट्रॉटस्की और जोसेफ विसरियोनोविच जुगश्विली उर्फ जोसेफ स्टालिन के मध्य सत्ता संघर्ष में स्टालिन को सफलता मिली। ट्राटस्की को 1927 ई. मे पार्टी से निकाल दिया गया तथा 1928 ई. में दूरस्थ प्रदेश में निर्वासित कर दिया गया। ट्राटस्की ने मध्य एशिया से भी स्टालिन के विरूद्ध गतिविधियाँ जारी रखीं तो 1928–29 ई. के शीतकाल में स्टालिन ने दमन का आदेश दिया। तेजी से रूस से निकलते हुए ट्राटस्की कुस्तुन्तुनिया के निकट जा बसा, वहाँ उसने आत्मकथा लिखी, बोल्शेविक क्रान्ति का लेखाजोखा किया और स्टालिनवाद पर प्रहार किया।

स्टालिन का जन्म गोरी नामक गाँव में 1879 ई. में एक चर्मकार परिवार में हुआ। उसके पिता उसे पादरी बनाना चाहते थे। परन्तु उसकी मार्क्सवाद में अधिक रूचि थी। वह सोश्यल डेमोक्रेटिक पार्टी से सक्रियता से जुड़ गया। 'स्टालिन' नाम स्टील के आधार पर पड़ा। वह 1903 में लेनिन के प्रथम अनुयायी बोल्शेविकों में से एक था। 1902–13 ई. के मध्य उसे

6 बार कैद किया गया एवं निर्वासित किया गया। पाँच बार वह बचकर निकल गया परन्तु 1913 में उसे आर्कटिक वृत्त में भेज दिया गया, जहाँ वह मार्च, 1917 की क्रान्ति के बाद मुक्त होने तक रहा। स्टालिन ने रूस में रहकर आन्दोलन चलाना उपयुक्त समझा। वह पार्टी का महासचिव था, सरकार बनने पर राष्ट्रिक जातियों का मंत्री भी बनाया गया। वह समाजवाद को पहले रूस में केन्द्रित करने के पक्ष में था। स्टालिन ने कमेनेव और जिनोवेव के सहयोग से ट्रॉटस्की को परे धकेल कर, सर्वोच्च सत्ता अर्जित करने में सफलता प्राप्त की। स्टालिन ने लेनिन के उत्तराधिकारी के रूप में सत्ता हस्तगत की व 6 मार्च, 1953 ई. को उसकी मृत्यु हुई। उसके लम्बे शासन काल में सोवियत संघ ने बहुत प्रगति की, द्वितीय विश्व युद्ध में विजय प्राप्त की और दो महाशक्तियों के युग में अमेरिका की बराबरी की।

अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

प्र.1 प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व नवोदित दो शक्तियों का नाम लिखिए।

प्र.2 मित्र राष्ट्रों के नाम लिखिए।

प्र.3 प्रथम विश्व युद्ध के बाद नवसृजित राज्यों के नाम लिखिए।

प्र.4 'ट्रिपल एंतात' में सम्मिलित देशों के नाम लिखिये।

प्र.5 शांति सम्मेलन में सम्मिलित प्रमुख व्यक्तियों के नाम लिखिये।

प्र.6 शांति सम्मेलन में देशी राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में भारत के किस राजा ने भाग लिया?

प्र.7 बोल्शेविक का अर्थ बताइये।

प्र.8 रासपुटिन कौन था?

प्र.9 लेनिन का पूरा नाम लिखिये।

प्र.10 गैपों के बारे में क्रांतिकारियों की धारणा क्या थी?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्र.1 मोरक्को संकट से आप क्या समझते हो?

प्र.2 रूस द्वारा बाल्कन में रूचि के क्या कारण थे?

प्र.3 प्रथम विश्व युद्ध का तात्कालिक कारण लिखिये।

प्र.4 वर्साय की सन्धि की प्रमुख शर्ते लिखिये।

प्र.5 'खूनी रविवार' की घटना का रूस के इतिहास में महत्व बताइये।

प्र.6 रूसीकरण की नीति से आप क्या समझते हो?

प्र.7 बोल्शेविक क्रांति में लेनिन का योगदान लिखिए।

प्र.8 जारशाही का अंत किस क्रांति के द्वारा हुआ?

प्र.9 स्टालिन ने किस प्रकार से रूस की सत्ता प्राप्त की उसके कार्यों का वर्णन कीजिए।

प्र.10 पेट्रोग्राड की मजदूर हड़ताल का वर्णन करो।

निबन्धात्मक प्रश्न

प्र.1 प्रथम विश्व युद्ध के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।

प्र.2 बोल्शेविक क्रांति के परिणामों का विवरण दीजिए।

प्र.3 1917 ई. की रूसी क्रांति के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।

प्र.4 प्रथम विश्व युद्ध के राजनैतिक परिणामों का उल्लेख कीजिए।

प्र.5 बोल्शेविक दल के उत्कर्ष में लेनिन की भूमिका का उल्लेख कीजिए।